वर्ष : ६ अंक : ८
अगस्त : १९८७
विवेक शिखा

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

११. श्री पी० राम—पटना (बिहार)
१२. श्री अशोक कुमार टांटिया—कलकत्ता (प० बंगाल)
१३. श्री धर्म पाल—नई दिल्ली (नई दिल्ली)
१४. श्री रमेश चन्द्र कपूर—इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश)
१५. श्री पलक बसु—इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश)
१६. प्राचार्य, संतगजानन महाराज कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग—शेगांव (महाराष्ट्र)
१७. श्री प्रभाकर सिंह—इलाहाबाद
१८. श्रीमती मंजु रस्तोगी—दुमका (बिहार)
१९. श्री कमल कुमार गुहा—कलकत्ता (पश्चिम बंगाल)
२०. श्री विवेक भुजंग राव कुलकर्णी—नागपुर (महाराष्ट्र)
२१. श्रीराम विलास चौधरी—सुपौल, दरभंगा (बिहार)
२२. डा० रमेश चन्द्र प्रसाद—देवघर (बिहार)
२३. श्री मातादीन मिश्र—सारण (बिहार)
२४. एम० एम० नावालगी—कादरा (कर्नाटक)
२५. श्री हेमराज साहू—नरसिंहपुर (म० प्र०)
२६. डा० प्रकाश चन्द्र मिश्र—पटना (बिहार)
२७. श्री विनोद ब्रजभूषण अग्रवाल—नागपुर (महाराष्ट्र)
२८. श्री केशरदेव भालोटिया—जरमुण्डी (बिहार)
२९. श्री धर्मवीर शर्मा—खण्डवाया (उत्तर प्रदेश)
३०. श्री शिवशंकर सुखदेव पाटील—शेगांव (महाराष्ट्र)
३१. श्री गजानन महाराज संस्थान—शेगांव (महाराष्ट्र)
३२. श्री दयाशंकर तिवारी—लाल बाजार, सीवान (बिहार)
३३. श्री राजकुमार गडोडिया—अपर बाजार (रांची
३४. कुमारी चुक चुक—बेलगांव (महाराष्ट्र)
३५. डॉ० श्रीमती वीणा कर्ण—पटना (बिहार)
३६. डॉ० सम्पत पाटील—भदोल (महाराष्ट्र)
३७. श्री रमाशंकर राय—वाराणसी
३८. श्री आर० के० यादव—फैजाबाद
३९. कुमारी अल्पना सकलेचा—बम्बई
४०. श्री हिम्मत लाल रणछोड़दास शाह—बम्बई
४१. श्री नीरज गुप्ता—रायपुर (मध्य प्रदेश)
४२. डॉ० गीता देवी—४४, टैगोर टाउन, इलाहाबाद
४३. डॉ० शैल पाण्डेय—४१, टैगोर टाउन, इलाहाबाद
४४. श्री रामानन्द गुप्ता—बिसवा (उत्तर प्रदेश)
४५. श्री निशीथ कुमार बोस—तपन प्रिंटिंग प्रेस, पटना

इस अंक में

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो।

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—६ अगस्त—१९८७ अंक—८

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

संपादक
डॉ० केदारनाथ लाभ

सहायक संपादक
शिशिर कुमार मल्लिक
श्याम किशोर

संपादकीय कार्यालय।
रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर,
छपरा—८४१३०१
(बिहार)

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य	२५० रु०
वार्षिक	२० रु०
रजिस्टर्ड डाक से	३५ रु०
एक प्रति	२ रु० ५० पैसे

रचनाएं एवं सहयोग - राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजनेकी कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

पहले ईश्वरलाभ करो, फिर धन कमाना; इसके विपरीत पहले धनलाभ करने की कोशिश मत करो। यदि तुम भगवत्प्राप्ति कर लेने के बाद संसार में प्रवेश करो तो तुम्हारे मन की शान्ति कभी नष्ट नहीं होगी।

(२)

ईश्वर में भक्ति-विश्वास नहीं है, इसीलिए तो जीव को इतना कर्म-भोग भोगना पड़ता है। जिससे देह त्यागते समय मन में ईश्वर का चिन्तन चले, इसके लिए पहले से ही उपाय करना चाहिए। वह उपाय है अभ्यास योग। यदि जीवन भर ईश्वर-चिन्तन का अभ्यास किया जाए तो अन्त समय में भी मन में ईश्वर का ही विचार आएगा।

(३)

माया को देखने की इच्छा से प्रार्थना करते हुए एक दिन मुझे इस प्रकार का दर्शन हुआ—एक छोटा सा बिन्दु धीरे-धीरे बढ़ते हुए एक बालिका के रूप में परिणत हुआ; बालिका क्रमशः बड़ी हुई और उसके गर्भ हुआ; फिर उसने एक बच्चे को जन्म दिया और साथ ही साथ उसे निगल गई। इस प्रकार उसके गर्भ से अनेक बच्चे जन्मते गये और वह उन सबको निगलती गई। तब मेरी समझ में आया कि यही माया है।

(४)

निर्लिप्त होकर संसार में रहना कैसा है, जानते हो? जैसे कमल की पँखुड़ियाँ या कीचड़ में रहनेवाली 'पाँकाल' मछली। जल में रहते हुए भी कमल की पँखुड़ियों में जल नहीं लगता, कीचड़ में रहते हुए भी 'पाँकाल' मछली के अंग में कीचड़ नहीं लगता।

दस दोहे

—डॉ० केदारनाथ लाभ

अंग अंग में जग रही, एक अनोखी प्यास।
रामकृष्ण का हो सतत, मेरा मन अधिवास ।।१।।

तुम यंत्री, मैं यंत्र हूँ, तुम वादक मैं बीन।
देव, तुम्हारे चरण के, मैं हूँ नित्य अधीन ।।२।।

तुम सावन के घन सघन, मेरा मन वन-मोर।
तुम पूनम के चन्द्र हो, मेरा चित्त चकोर ।।३।।

लाख करूँ, तनता नहीं, मुझसे मेरा पाल।
कृपा-वायु से खींच लो, मेरी तरी कृपाल ।।४।।

भुवनेश्वरी-तनय सदय, विश्वनाथ-सुत धीर।
वीरेश्वर रक्षा करें, हरें कोटि भव-पीर ।।५।।

मृत्यु आत्म-संकोच है, जीवन आत्म-प्रसार।
सब में तुम, तुम में बसा, यह सारा संसार ।।६।।

शुद्ध चित्त, पावन नयन, कर ले हृदय उदार।
यही धर्म है, तू कहाँ, भटक रहा केदार ।।७।।

लो बिजली कौंधी, उठा ज्योति-सिन्धु में ज्वार।
रामकृष्ण छवि-रवि निरख, मुग्ध हुआ केदार ।।८।।

उर कामारपुकुर हुआ, पंचवटी-से प्राण।
दृष्टि-दक्षिणेश्वर बसें, रामकृष्ण भगवान ।।९।।

कनक कामिनी का नहीं, जिनमें किंचित वास।
उन अवतार वरिष्ठ के, दासों का मैं दास ।।१०।।

●

सम्पादकीय सम्बोधन

तिन्ह कें हृदय बसहु रघुराया

मेरे आत्मस्वरुप मित्रो,

उस दिन आसमान खुला था। धूप फैली थी। सावन का महीना होने पर भी बरसात का कोई आसार नहीं दिख रहा था। नीचे उद्यान में पौधे झूम रहे थे। गुलाब की डालियों पर बड़े-बड़े लाल-लाल फूल निकल आये थे। तभी हुआ यह कि आकाश के एक कोने में बादल का टुकड़ा कहीं से आ पड़ा। और लो, देखते-देखते सारा आकाश मेघाच्छन्न हो गया। काले-काले मोटे-मोटे बादल। फिर मेघ गरजने लगे। बिजलियाँ कौंधने लगीं। हवा का झोंका तेज हो गया। इतना तेज कि पौधे तांडव नृत्य करते दीखने लगे। कई सुकुमार सुहावने फूल झड़कर धरती पर बिखर गये। बिजलियों को घटाएँ लील जाती थीं। बादल और बिजलियों का युद्ध देखते ही बनता था।

बादल और बिजलियाँ। अंधकार और प्रकाश। इनकी लड़ाई शाश्वत है। मैं भावों से घिर गया। आज भी यही हो रहा है। बाहर और भीतर बादल और बिजलियों के युद्ध चल रहे हैं। कई देश अभी भी लड़ रहे हैं। छोटे-मोटे १४ देशों में युद्ध की प्रक्रिया चल रही है। फिर कई देश अपने भीतर ही नागरिकों के हिंसात्मक आन्दोलनों से जूझ रहे हैं। कुछ सुलह-समझौते होते हैं फिर नये उपद्रवह खड़े हो जाते हैं। भारत में पंजाब की समस्या को लेकर संत लौंगोवाल से समझौता हुआ। लगा, अब सब ठीक हो जायगा। किन्तु लौंगोवाल की हत्या हो गयी। फिर समस्या ने उग्र रूप धारण कर लिया। श्रीलंका में तमिल उग्रवादियों का संघर्ष हो रहा था। अभी समझौता हुआ। हम प्रसन्न हैं। पता नहीं कल क्या हो जाय! रूस और अमरीका में एक समझौते की कोशिश हो रही है कि प्रक्षेपास्त्रों के प्रयोग पर रोक लगा दी जाय। लेकिन दूसरी ओर सामरिक तैयारियाँ हो रही हैं। सारे संसार में बादल और बिजली के खेल चल रहे हैं।

बादल और बिजली दोनों के खेल सनातन हैं। त्रेता में भगवान राम के राज्याभिषेक की तैयारी हो रही थी। रोशनी का, प्रकाश का राज्य स्थापित होनेवाला था, तभी बादल आ घिरा। राम का वनवास। क्या राम का वनवास मानव की नियति है? क्या जीवन में जो शुभ है, जो भद्र है, जो सुन्दर है उसका निर्वासन होता ही रहेगा? क्या राम वन जाने को अभिशप्त हैं?

राम अर्थात् भद्रता, सुन्दरता, शिवता और मंगलमयता। ये ही तो हमारे जीवन मूल्य हैं! ये ही तो हमारे जीवन के मेरुदण्ड हैं, मूलाधार चक्र हैं! इसके अभाव में क्या हम मनुष्य रह भी सकते हैं? लेकिन राम के राज्याभिषेक की तैयारी होते ही उन्हें वन क्यों जाना पड़ता है? यही हमारी समस्या है। बिजली को बादल क्यों निगल लेता है? यही प्रमुख प्रश्न है।

इसी संदर्भ में रामचरित मानस में एक सुन्दर प्रसंग आया है। श्रीराम का निर्वासन हो गया है। वे सीता और लक्ष्मण सहित अयोध्या छोड़कर प्रयाग आते हैं और फिर वाल्मीकि के [illegible]

वाल्मीकि से पूछते हैं कि कृपया वह स्थान बताइए जहाँ मैं कुछ समय निवास करूँ। वाल्मीकि ने एक लम्बी सूची प्रस्तुत की। वह बड़ा ही रोचक है। इसे मानस में राम-निवास प्रसंग कहा जाता है। इसी प्रसंग में उन्होंने कहा—

काम कोह मद मान न मोहा । लोभ न छोभ न राग न द्रोहा ।

जिन्ह कें कपट दंभ नहिं माया । तिन्ह कें हृदय बसहु रघुराया ॥

आशय यह है कि जिनके न तो काम, क्रोध, मद, अभिमान और मोह है ; न लोभ है, न क्षोभ है; न राग है, न द्वेष है; और न कपट, दम्भ और माया ही है—हे रघुराज ! आप उनके हृदय में निवास कीजिए।

ये ही वे सद्‌वृत्तियाँ हैं जिनके रहने पर श्रीराम निवास करते हैं। जहाँ ये सद्‌वृत्तियाँ नहीं हैं वहाँ राम नहीं रहते। असल बात है मनुष्य के चित्त का पवित्र होना पवित्र चित्त में ही राम का निवास होता है।

आज प्रक्षेपास्त्रों को समाप्त करने की बात हो रही है। लेकिन मुख्य समस्या अस्त्र की समाप्ति नहीं है। मुख्य समस्या है मनुष्य के मन को शुद्ध करने की। 'द प्लेन ट्रूथ' (अप्रैल, १९८७) में उसके प्रकाशक जोसेफ डब्लू॰ कैंच ने लिखा है कि यदि सभी प्रक्षेपास्त्र समाप्त कर दिये जावें तो भी क्या यह संसार रहने योग्य सुरक्षित स्थान हो जायगा ? आप अपने पड़ोस या शहर के विषय में पहले सोचें। आपके क्षेत्र की अपराध-दर क्या है ? क्या आप रात की अँधेरी गली में अकेले घूमने में सुरक्षा का अनुभव करते हैं ? क्या आप महसूस करते हैं कि स्कूल जाने आने के बीच, या स्कूल में या आपके घर के सामने अकेले रहने में आपके बच्चे सुरक्षित हैं ? और क्या आपका घर ही गुण्डागर्दी या डकैतो से मुक्त है ?

आप सोचें। सन् १९१४ ई० में प्रक्षेपास्त्र नहीं थे। तब भी प्रथम विश्व युद्ध छिड़ गया जो पूरे चार विनाशकारी वर्षों तक चला। दो करोड़ लोग इस युद्ध में मारे गये और उतने ही लोग इस युद्ध से उपजे अकाल, बीमारियों तथा राजनीतिक उथल-पुथल से मरे। सन् १९३९ ई० में प्रक्षेपास्त्र नहीं थे, फिर भी यूरोप में द्वितीय विश्व युद्ध छिड़ गया जिसमें नागरिक और सैनिक कुल मिलाकर पाँच करोड़ लोग काल के ग्रास हो गये। बड़े-बड़े नगर रेगिस्तान हो गये और यह सब १९४५ से हिरोशिमा में अणुबम गिराने के पहले हुआ।

हिंसा मनुष्य के इतिहास से जुड़ी रही है। अगर आज सारे प्रक्षेपास्त्र समाप्त भी कर दिये जायं तो भी शोषण, दमन, अन्याय, घृणा, धोखेबाजी, अपराध आदि का क्या अन्त हो जायेगा ?

और फिर आणविक अस्त्र बनते ही क्यों है ? क्योंकि हमने शान्ति में रहना नहीं सीखा है। हम जानते नहीं हैं कि राम का निवास कहाँ होता है। अथवा हम यह महसूस नहीं करते हैं कि राम यहाँ निवास करें। राम यहाँ बसे—यह हमारी माँग नहीं बनी है, हमारी चाह नहीं बनी है।

आप कहेंगे अणु-अस्त्र हमारी बुद्धि का चमत्कार है। विज्ञान वरदान है। हम इन आणविक [illegible] सकते हैं और बुराई के लिए भी। यह तो हमारी इच्छा पर

निर्भर करता है। लेकिन मैं आपसे निवेदन करूँगा कि ज्ञान यदि 'विमल विवेक' से नहीं जुड़ता है तो विनाश निश्चित है। बर्ट्रेण्ड रसल ने ज्ञान के विकास को विवेक में रूपान्तरित करने पर जोर दिया था। उनका कथन है—**"मानव जाति अब तक जीवित रह सकी है तो अपने अज्ञान व अक्षमता के कारण ही; परन्तु अगर ज्ञान व क्षमता मूढ़ता के साथ युक्त हो जाये तो उसके बचे रहने की कोई सम्भावना नहीं है। ज्ञान शक्ति है, पर यह शक्ति जितनी अच्छाई के लिए है उतनी ही बुराई के लिए भी। निष्कर्ष यह कि जब तक मनुष्य में ज्ञान के साथ-साथ विवेक का भी विकास नहीं होता, ज्ञान की वृद्धि दुःख की वृद्धि ही साबित होगी।"** (Impact of Science on Society, pp. 120-21)

यूनेस्को की प्रस्तावना में भी इसी आशय को व्यक्त किया गया है—"Since wars begin in the minds of men, it is the minds of men that defences of peace must be constructed." **अर्थात् चूँकि युद्ध की शुरुआत लोगों के मन में ही होती है इसीलिए लोगों के मन में ही शान्ति के साधनों का निर्माण होना चाहिए।**

यह मन अगर शुद्ध नहीं होता है तो युद्ध होते रहेंगे और राम अपने निवास के लिए जगह ढूँढ़ते रहेंगे। एक अँग्रेज विद्वान् डॉ० जोशिया ओल्ड फील्ड ने अपने "युद्ध और अन्तर्राष्ट्रीयता" शीर्षक व्याख्यान में द्वितीय विश्वयुद्ध के कुछ पहले ही मित्र राष्ट्रों के बीच हुए समझौते के सन्दर्भ में कहा था—

अच्छे लोगों द्वारा युद्ध के साधनों पर की गयी चर्चा की अपेक्षा बुरे लोगों द्वारा शान्ति के साधनों पर की गयी चर्चा कहीं अधिक युद्धों का कारण होती है।

आखिर राम ने अपने निवास के लिए उपयुक्त जगह की जिज्ञासा वाल्मीकि से क्यों की? राम शुभ और शिवात्मक भावनाओं के प्रतीक हैं, भद्र और दैवी वृत्तियों के विग्रह हैं, प्रेम के प्रतिरूप हैं—छल कपट से दूर—निश्छलता और सरलता के स्वरूप हैं। गोस्वामीजी ने कहा है—**रामहि केवल प्रेम पियारा**। और राम ने स्वयं कहा है—**मोहि कपट छल छिद्र न भावा**। लेकिन वन में तो असुरों की प्रधानता है। आसुरी वृत्तियाँ और दैवी वृत्तियाँ साथ-साथ कैसे रह सकती हैं?

हम लोग देखते हैं कि अयोध्या से भी राम को निकल जाना पड़ा है। क्यों? कहाँ राज्याभिषेक की तैयारी और कहाँ वनवास के लिए महायात्रा! क्या रहस्य है इसका? गहराई से देखें तो वहाँ भी आसुरी वृत्तियों की प्रधानता होने लगी थी। दशरथ की तीनों पत्नियाँ तीन आध्यात्मिक शक्तियाँ हैं—**'ज्ञानशक्तिश्च कौशल्या, सुमित्रोपासनात्मिका, क्रियाशक्तिश्च कैकेयी।'** कौशल्या ज्ञान शक्ति हैं, सुमित्रा उपासना शक्ति (भाव रूपिणी) और कैकेयी हैं क्रिया शक्ति। ज्ञान, भक्ति और कर्म—अध्यात्म के तीन पथ हैं। जीवन को सार्थक समुन्नत करने की तीन वृत्तियाँ हैं। ये तीनों मिली रहें तो वहाँ राम का निवास होगा। इनमें यदि ताल मेल न हो तो राम का वहाँ टिकना कठिन है। कामायनी में कहा है—

ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है,
इच्छा क्यों पूरी हो मन की।
एक दूसरे से न मिल सके,
यह विडम्बना है जीवन की।

यहाँ अवध में ज्ञान और भाव (इच्छा) शक्ति में तो सामंजस्य था पर क्रियाशक्ति ने विद्रोह कर दिया। कैसा विद्रोह था? क्रिया यदि अनासक्त और निःस्वार्थ भाव से पूर्ण हो तो वह मंगलमयी है। किन्तु उसमें यदि लोभ और स्वार्थ आ जाय तो वह दुःखदायिनी हो जाती है। मंथरा लोभ की प्रतीक है। **'नाम मंथरा मंदमति'**। वह पतनोन्मुखी प्रवृत्ति है। राम के जीवन को जिन तीन नारियों ने मोड़ा है वे हैं—ताड़का, मंथरा और शूर्पणखा—अर्थात क्रोध, लोभ और काम। ताड़का क्रोध शक्ति है। जब राम विश्वामित्र के साथ जाते हैं तो सब से पहले ताड़का मार्ग में खड़ी हो जाती है— बाधिका बनकर। राम। क्रोध का अतिक्रमण कर ही राम चल सकते हैं। जब राम का राज्याभिषेक होने लगता है तो मंथरा कैकयी को मंत्रणा देकर राम के वनवास का कारण बनती है। वह लोभ वृत्ति है। उस पर शत्रुघ्न ने आघात किया। फिर वन में शूर्पणखा आती है। लक्ष्मण उसकी नाक काट लेते हैं। क्रोध, लोभ और काम—ये जहाँ हों, वहाँ राम नहीं रहते, क्योंकि—**'तात तीनि अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ'**। राम इनका अतिक्रमण करके ही रहेंगे। इसीलिए जब तक मंथरा (टेढ़ी देह-टेढ़ी बुद्धि) अर्थात् लोभ वृत्ति, कैकेयी अर्थात् क्रिया शक्ति की दासी बनी रहती है, क्रिया के पीछे-पीछे चलती है तब तक तो खैर है, किन्तु जब वह कैकेयी को मंत्रणा-देकर अपने कहे अनुसार चलाने लगती है अर्थात् जब लोभवृत्ति से प्रेरित होकर हमारी क्रिया होने लगती है तब वहाँ राम का—दैवी भावना का, सद्वृत्ति का—राज्याभिषेक नहीं हो सकता। राम का वहाँ से निर्वासित हो जाना अवश्यम्भावी है। राम वन चले जाते हैं। और वाल्मीकि से पूछते हैं, मैं कहाँ रहूँ? वाल्मीकि जानते हैं कि जहाँ क्रोध, लोभ, मोह, छल, कपट रहेंगे वहाँ राम नहीं रह सकते। इसी से वे कहते हैं—

काम कोह मद मान न मोहा। लोभ न छोभ न राग न द्रोहा॥

जिन्ह कें कपट दंभ नहि माया। तिन्ह कें हृदय बसहु रघुराया॥

आज हमारे भीतर ताड़का, मंथरा और शूर्पणखा—क्रोध, लोभ और काम—तीनों ने अपना अधिवास बना लिया है। फिर शान्ति और सुख कहाँ से प्राप्त होंगे? हमारे देश में बनी योजनाएँ विफल हो रही हैं। अनाचार-भ्रष्टाचार का बोलबाला है। हमारे घर के चारों ओर का परिवेश हिंसा, भय और संत्रास से भरा है। हमारा विश्व युद्ध की विभीषिकाओं की आशंका से ग्रस्त है। कारण यही है कि हमारे भीतर राम का निवास नहीं हो रहा है और ताड़का, मंथरा और शूर्पणखा हम पर शासन कर रही हैं, हमारा दिशा-निर्देश कर रही हैं।

स्वामी विवेकानन्द ने इसी से हमलोगों से कहा था—"नैतिक बनो। पूर्ण हृदय वाला मनुष्य बनो। दृढ़ नैतिक और प्रचंड वीर बनो। धार्मिक मतवादों में माथापच्ची नहीं करो। केवल कायर ही पाप करते हैं, बहादुर नहीं, नहीं, अपने मन में भी नहीं।"

हमारा दिशा निर्देश करते हुए उन्होंने पुनः कहा था—" मनुष्य बनो और निकट के लोगों को बहादुर, नैतिक एवं सहानुभूतिपूर्ण बनाओ। मेरे बच्चों, तुम्हारे लिए नैतिकता और वीरता के सिवा अन्य कोई धर्म नहीं है। कायरता नहीं, पाप नहीं, अपराध नहीं, दुर्बलता नहीं—बाकी चीजें स्वयं आ [illegible] राम के गुण हैं। राम को व्यक्ति नहीं सद्वृत्तियों का पुंज मानकर उनको अपने

जीवन में हमें उतारना ही होगा। स्वामीजी कहा करते थे, "मेरे बच्चों, धर्म का रहस्य सिद्धान्त में नहीं, आचरण में है। भद्र बनना और शुभ कर्म करना —यही धर्म का सार तत्व है।.......रुपये पैसे, नाम-यश, और पांडित्य कुछ नहीं देते। प्रेम ही सब कुछ देता है। चरित्र ही संकटों की चट्टानी दीवालों को भेदकर मार्ग प्रशस्त कर लेता है।" ऐसे कितने ही उपदेश स्वामी विवेकानन्द जी ने वर्तमान विश्व को दिये हैं।

श्रीराम के आदर्शों को जीवन में ढालकर दिखाने के लिए ही वर्तमान विश्व में श्रीरामकृष्ण का अवतरण हुआ था। काम, क्रोध, लोभ, मोह, दम्भ-द्वेष आदि समस्त विकारों का अतिक्रमण कर वे स्वयं धर्म के मूर्तिमान विग्रह, जीते;जागते स्वरूप हो गये थे। यह सच है कि प्रत्यक्ष रूप से उन्होंने न ताड़का का बध किया था न किसी मंथरा या शूर्पणखा के दुश्चक्र को ही उन्हें झेलना पड़ा था ओर न किसी बड़े युद्ध के आयोजक रावण को ही उन्होंने मारा था। किन्तु यह भी सच है कि उन्होंने इन सब पात्रों की मूल वृत्ति का विनाश किया था। वे बुरे को नहीं, बुराई को मारने आये थे। वे कुछ व्यक्तियों का नहीं, कुल विकृतियों का संहार करने आये थे। वे हमें यह दिखाने आये थे कि हम अपने भीतर निवास करने वाली ताड़का, मंथरा, शूर्पणखा का बध कर, अपने हृदय-राज्य पर शासन करनेवाले रावण (मोह) का विनाशकर स्वयं राम का निवास बन जा सकते हैं और जितने अधिक लोग इस प्रकार राम का अधिवास बनते जायँगे उतना ही अधिक यह संसार निर्मल, प्रेममय, युद्ध-भय से मुक्त, रहने योग्य वन सकेगा। फिर न तो किसी आणविक अस्त्र के निर्माण की जरूरत होगी और न उसको विनष्ट करने की समस्या खड़ी होगी।

श्रीरामकृष्ण ने एक बार श्री नरेन्द्रनाथ से कहा था—'जो राम थे, जो कृष्ण थे, वही इस शरीर में श्रीरामकृष्ण हैं, और वह भी तुम्हारे वेदान्त के मत से नहीं, सच में, सच में।' इन धर्मसेतु श्रीरामकृष्ण का आश्रय ग्रहण कर एक चींटी भी धर्म के क्षेत्र में प्रवेश कर सकती है। शंका और संत्रास, कोलाहल और अशान्ति से भरे इस विश्व में श्रीरामकृष्ण का भाव ग्रहणकर हम इस विश्व को राम-निवास वनाने में अपना योगदान करें—यही आपसे मेरा अनुरोध है।

भगवान श्रीरामकृष्ण से मेरी प्रार्थना है कि वे अपनी कृपा की वृष्टिकर हम सब को अपने भावादर्शों की ओर उन्मुखकर हमारे जीवन और जगत को धन्यता प्रदान करें। जय श्रीरामकृष्ण।

साक्षात्कार

हमारा भविष्य ज्योतिर्मय है

—स्वामी रंगनाथानन्द
अध्यक्ष, रामकृष्ण मठ, हैदराबाद

[श्रीरमकृष्णादेव के १५० वें अवतरण-उत्सव में भाग लेने श्रीमत स्वामी रंगनाथानन्द जी महाराज गत वर्ष रामकृष्ण योगोद्यान मठ, कांकुडगाछी, कलकत्ता पधारे थे। उसी समय बंगला की प्रसिद्ध पत्रिका 'देश' के प्रतिनिधि ने उनका एक साक्षात्कार (इंटरव्यू) लिया था, जिसमें देश की ज्वलंत समस्याओं पर बातचीत हुई थी। इस साक्षात्कार के महत्व को देखते हुए हम इसका हिन्दी रूपान्तर 'देश' की अनुमति से प्रकाशित कर रहे हैं। रूपान्तरकार हैं—डॉ० केदारनाथ लाभ।-सं०]

मात्र सत्रह वर्ष की उम्र में केरल के त्रिक्कुर ग्रामवासी शंकरन् नामक जिन अनजाने नव-किशोर (जन्म १९०८ ई०) ने उस दिन रामकृष्ण मिशन में योगदानकर संन्यासव्रत ग्रहण किया था, वे ही हैं आज भारतीय धर्म और जीवन-दर्शन के अन्यतम श्रेष्ठ व्याख्याता तथा रामकृष्ण-विवेकानन्द द्वारा प्रदर्शित कर्मयज्ञ के अन्यतम ऋत्विक—स्वामी रंगनाथानन्दजी महाराज। देश और विदेशों में उनकी ख्याति और अभिज्ञता अपरिमित है। उनके ज्ञान और कार्यों की अनेक स्वीकृतियों के साथ उस दिन "इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय एकात्मता पुरस्कार—१९८५" भी जुड़ गया। रामकृष्ण मठ और मिशन के कुशल न्यासी (ट्रस्टी) तथा रामकृष्ण मठ, हैदराबाद के अध्यक्ष स्वामी रंगनाथानन्दजी महाराज इस पुरस्कार के प्रथम प्राप्तिकर्ता हुए।

इन्हीं स्थितप्रज्ञ, शान्तशील, कर्मप्रिय, बुद्ध के समान और श्रद्धेय संन्यासी के साथ बातचीत करने का दुर्लभ सुयोग कांकुड़गाछी स्थित रामकृष्ण योगोद्यान मठ के सदाशयतापूर्ण अनुग्रह से हमलोगों ने पाया है। रंगनाथानन्दजी श्रीरामकृष्णदेव के आविर्भाव की १५० वीं वर्षगांठ के उपलक्ष में योगोद्यान में आये थे। कोई भी व्यक्तिगत प्रश्न नहीं; धर्म, राष्ट्र और समाज एवं रामकृष्ण भावान्दोलन के सम्बन्ध में हमलोगों के साधारण प्रश्नों के जो असाधारण उत्तर उन्होंने दिये हैं—उन्हीं का यह अनूदित लिखित रूप है।

देश : महाराज, सारा देश आपका कार्यक्षेत्र रहा है। भारत के हर कोने में आप गये हैं। कई स्तरों के और कई प्रकार के लोगों के साथ आपने बातें की हैं। भारत के स्वरूप को आप जानते हैं। तथापि वर्तमान भारत की ओर देखकर क्या आपको यह नहीं लगता है कि हमलोगों ने अपनी स्मरणीय विख्यात परम्परा, बोध-विश्वास, सद्गुण आदि को भुला दिया है? भारत का नागरिक आज चरम आत्मिक पतन और विभ्रान्ति के पथ से गुजर रहा है?

रंगनाथानन्द : कई बार लगता है कि हमने भुला दिया है। किन्तु तात्कालिक दृष्टि से हटकर थोड़ी गहराई में जाने पर देखा जायगा—यह क्षणिक है। जो कुछ चिरन्तन है, भारत की अन्तरात्मा का अलंकार है, उसमें किसी का भी विनाश नहीं हुआ है। हमलोगों के पुराने सद्गुण आदि पहले जैसे थे, अब भी वैसे ही हैं। तब, कई गुण अभी एक जगह पर आकर ठहर गये हैं। कई गुण जातपात के विचार के ऊपर खड़े हैं, और फिर कई गुण अवस्था पर निर्भर हैं। अभी विचारकर देखना

होगा कि किन गुणों को ग्रहण किया जाय और किन्हें छोड़ दिया जाय। सोचना होगा कि वर्तमान युग के लिए उपयोगी कौन गुण है। इस विचार के फलस्वरूप हमलोगों में एक विश्वास उत्पन्न होगा। अतीत में यह विचार नहीं था।

अभी हमलोगों में वही विचार-बोध जग गया है। साथ ही अभी हमलोग एक ऐसी जगह आ पहुंचे हैं, जिस अवस्था में, हमलोगों में क्या रहेगा और क्या जायगा, यह बोध उत्पन्न हुआ है। पारम्परिक गुण इन दिनों प्रश्नों के आमने-सामने आ खड़े हुए हैं। एक ओर हमलोगों की विचार-बुद्धि है और दूसरी ओर वर्तमान भारत की संशयी प्रकृति—बीच में हमलोगों की परम्परा, सद्‌गुण आदि—इन तीनों ने मिलकर एक आन्दोलित अवस्था उत्पन्न कर दी है। हमलोग अभी विश्वास-अविश्वास, सन्देह-असन्देह के झूले में झूल रहे हैं। इस अवस्था को मैं उत्तम कहूंगा।

देश : उत्तम क्यों कहिएगा महाराज ?

रंगनाथानन्द : उत्तम इसलिए कहूंगा कि इस समय हमलोग किसी भी एक विश्वास को न मान पाते हैं, न छोड़ पाते हैं। इस हिल-डोल के बीच से ही एक परिवर्तन आयगा। वर्तमान समाज में एक भयंकर खेल चल रहा है। हमलोगों का जो कुछ उत्तम है, वह साधारणत: हमें एक जगह पर जड़ीभूत कर देता है। आत्म-तृप्ति ला देता है। एवं क्रमश: यह देखा जाता है कि जो 'अच्छा' था वह खराब होने लगता है। इस समय उसी आबद्धता को एक शक्ति का धक्का लग रहा है। हमलोगों में एक नयी प्राणशक्ति आयी है। हमलोगों के समाज में अनेक भले लोग हैं, अनेक सद्‌विचार हैं। अबतक वे सब केवल थे। आज इन सब में एक गति का वेग आ गया है। अच्छापन है—केवल इतने से ही नहीं होगा। गतिशील होना होगा। एक व्यक्ति की साधुता, एक व्यक्ति का सत् आदर्श यदि एक ही जगह स्थिर रहे, दूसरे को स्पर्श नहीं कर पाये तो सर्वाङ्गीण अच्छाई कभी नहीं होगी।

हमलोगों को अभी नये सिरे से विश्वास गढ़ना होगा। अपनी हास्यास्पद स्थिति से निकलकर एक नयी रोशनी में आना होगा। अपने बोध को इस प्रकार कार्य में लगाना होगा कि, यही अच्छा है, इसलिए मैं इसे ही पकड़ कर रखूंगा। कोई भी अशुभ शक्ति जिससे मुझे विचलित नहीं कर सके।

देश : स्वामी विवेकानन्द हमलोगों में इस बोध का जागरण ही तो चाहते थे।

रंगनाथानन्द : हाँ, स्वामीजी ऐसा ही चाहते थे। चिन्तन करो, सोचो, तथा अपनी जीवन-पद्धति और जीवन दर्शन का निर्माण करो। विवेकानन्द चाहते थे—कैसे प्रेम करना होगा, इसे पहले सीखो। अपने समीप के लोगों के साथ प्रेमपूर्ण आचरण करो। धीरे-धीरे इस प्रेम को जीवन के सभी स्तरों पर फैला दो। बचना सीखो, बचाना सीखो। हम सब एक ही समाज के लोग हैं। हम में से प्रत्येक का सामाजिक दायित्व है। मैं यदि स्वार्थी हो जाऊं या तुम यदि स्वार्थी हो जाओ तो चारों ओर अनन्त सद्‌गुणों के रहने पर भी समाज की कोई उन्नति नहीं होगी। इस विचार के सम्मुख अपने को खड़ा रखने पर ही मार्ग पाया जा सकता है। तब हमलोग समझ सकेंगे कि क्या करणीय है और क्या अकरणीय। एकमात्र इसी समीक्षा के फलस्वरूप हमलोगों में शुभ शक्ति का—जो शक्ति दीर्घकाल के संस्कारबद्ध इस समाज को, इस जीवन को रूपान्तर के पथ पर चला सकेगी—जागरण सम्भव है।

आजकल उसी परिवेश की तैयारी हो रही है। पारम्परिक गुणों को झाड़-पोंछकर हमलोग युगोपयोगी नये गुणों को जो मानविक विचार-बुद्धि पर प्रतिष्ठित हैं—उन्हीं सारे गुणों को जगाना चाहते हैं। यहाँ संस्कार या पुरातनपंथिता को कोई स्थान नहीं है। जब तक यह हास्यास्पद भंगिमा समाप्त नहीं होती है, जब तक एक स्थिर-चित्र नहीं निकल पाता है, तब तक हमलोगों को एक द्वन्द्व से गुजरना होगा। पहले जो बात कही है, एक ओर हमलोगों का पुरातन परम्परावाही ऐतिह्य और

दूसरी ओर मानवीयता पर आधारित नये विश्वास का उद्भव—इन्हीं दोनों के बीच हमलोगों का संघर्ष है। इस संक्रान्ति काल का, इस अवस्था का, चाहे जैसे हो, हमलोगों को अतिक्रमण करना होगा और हमलोग करेंगे। हमलोगों का वर्तमान समाज निश्चय ही अभीष्ट लक्ष्य की ओर आगे बढ़ेगा। इस विषय में कोई भी संदेह नहीं है।

देश : आपकी इस दृढ़ विश्वास भरी भावना के प्रति श्रद्धाशील रहने पर भी कहना पड़ता है कि ज्योति तो दूर की बात है, वर्तमान भारत के वक्ष पर अन्धकार जैसे और घनीभूत हो गया है। एक गंभीरतर अन्धकार! आपको कैसा लगता है?

रंगनाथानन्द : नहीं, अन्धकार ही अंतिम बात नहीं है। सब तो नहीं ही है। भारत के सामने अन्धकार की काली छाया कोई नयी बात नहीं है। यह देखो न, दीर्घ अन्धकारपूर्ण शताब्दी का अतिक्रमण कर हमलोगों ने स्वाधीन होने का सुयोग पाया। एक सम्मोहक निर्भरता से हम मुक्त हो गये। अनेक क्षमताएँ, अनेक परिवर्तन आये और हमलोगों ने ताजे ब्लाटिंग पेपर की तरह सब को सोख लिया। हम में से प्रत्येक में क्षमता के लिए आकांक्षा उत्पन्न हुई। और अधिक क्षमता। इसके फलस्वरूप क्या हुआ? इस क्षमता के मोह से हमलोगों ने समाज को भुला दिया। साधारण मनुष्य को, समाज को हम भूल गये। इसके फलस्वरूप आज स्वाधीनता पाने के इन चालीस वर्षों के बाद भी हमलोगों के सामने एक अभूतपूर्व संकट है। आज चारों ओर गतिहीनता की अवस्था है। चिर अन्धकार। किन्तु मानव का शुभ-चिन्तन तो रुका नहीं रहता। फिर नवीन चिन्तन शुरू हुआ है। स्वामी विवेकानन्द ने कहा था, सभी देशों का समाज एकमात्र मानव के शुभ चिन्तन के द्वारा ही विकास के पथ पर आगे बढ़ सकता है। आगे जाने के कितने ही चिर आचरित गतानुगातिक पथ हैं। यदि मनुष्य अपनी चिन्तन-शक्ति को आगे बढ़ने के हथियार की तरह व्यवहार नहीं करता तो उन पथों से अधिक दूर तक नहीं बढ़ा जा सकता।

नयी लहर जो उठ रही है या उठेगी उसके मूल में चिन्तन ही है। और इस चिन्तन में सहायक होंगी महापुरुषों की जीवनी और वाणी। उन लोगों के पथ का अनुसरण कर जो भारत जाग उठेगा उस जागरण का इतिहास पूर्व में नहीं था। इसी को मैं नयी लहर कहूँगा। इस नयी लहर के विन्यास से जो भारत जन्म लेगा, उस भारत का चरित्र महान होगा। मानवता के चरम विकास से समुन्नत होगा। असीम कर्मशीलता से वह भारत भरपूर होगा। यही हुआ हमलोगों का भविष्य। उसी भविष्य की ओर हमलोग धीरे-धीरे किन्तु दृढ़ चरणों से आगे—सामयिक अन्धकार का अतिक्रमण कर शाश्वत आलोक की ओर—बढ़ रहे हैं।

देश : बाहर से उस इंगित स्थान की ओर जाने के किसी संकेत का आभास होता है क्या? इस अन्धकार के हनन की साधना की ओर हम हैं, यह कैसे समझा जायगा?

रंगनाथानन्द : इस नये भारत को अभी हमलोग विच्छिन्न रूप से कुछ संगठनों, समितियों और संस्थानों के बीच अस्पष्ट रूप से देख पाते हैं। इसलिए, विशाल भारत का यह अवतरण, यह नवजागरण सहसा हमलोगों को दीख नहीं पड़ता है या दीख नहीं पड़ेगा। किन्तु अन्दर-अन्दर से यह दीख पड़ने लगा है। दृढ़ चरित्र समन्वित, कर्मोद्दीपन से जीवंत, प्राचीन और नवीन विश्वास के समन्वय से गठित एवं मानवीय गुणों से समृद्ध अनगिनत उद्दीप्त, जाग्रत प्राणाग्नि भारत के कोने-कोने में प्रज्वलित होने लगी है। ये सब इस विशृंखल भारत में असंख्य मरुद्यान की भाँति फैल गयी हैं। हरी श्यामलता की भाँति आधुनिक गुण इन मरुद्यानों की परम सम्पदा हैं।

देश : महाराज, आधुनिक गुणों का क्या तात्पर्य है?

रंगनाथानन्द : आधुनिक गुण के कथन से मेरा तात्पर्य है वे सारे गुण जो हमलोगों को तथा हमलोगों की मातृभूमि को और अधिक शक्तिशाली बना सकें। जो

हमलोगों के प्राचीन और आधुनिक संगठनों को सामाजिक दायित्व के पालन के लिए प्रस्तुत कर सकें। जो समाज को सुख एवं प्रत्येक मनुष्य के लिए निर्भर योग्य बना सकें। एक तरह से आधुनिक गुण हुआ मानव-बोध। मनुष्य में धीरे-धीरे यह बोध जग रहा है। यह बोध आत्मकेन्द्रित एवं समताग्राही चरित्र को सामाजिक एवं स्वदेश परायण होने की प्रेरणा देगा।

यह तोड़ने-जोड़ने का संक्रान्तिकाल है—जिस दौर से हमलोग गुजर रहे है, उस में जिस प्रकार दुःख है, उसी प्रकार सुख भी है। दुखः है कुछ प्राचीन विश्वासों को खोने का दुःख और सुख है नये विश्वासों का जन्म। इस में मुझे कोई संदेह नहीं है कि धीरे-धीरे हमलोग ऐसे भविष्य की ओर बढ़ रहे हैं जिस भविष्य को हमलोगों के महापुरुषों ने अपनी दूरदृष्टि से बहुत पहले देखा था।

देश : यह जिस अपरिहार्य परिवर्तन से हमलोग अभी गुजर हे हैं इस विषय में स्वामी विवेकानन्द का विचार क्या था? इस सम्बन्ध में कुछ कहिए।

रंगनाथानन्द : स्वामीजी ने इस सम्बन्ध में एक सुन्दर उदाहरण देकर कहा था, एक बीज मिट्टी में डालने पर पहले जो होता है वह है बीज के बीजत्व का नष्ट हो जाना। इसके बाद अंकुर का आगमन होता है—इसी परिवर्तित बीज से। ठीक इसी तरह का एक कार्य इस देश में हो रहा है। हमलोगों का अति प्राचीन यह समाज अभी परिवर्तन की ओर उन्मुख है। हमलोगों के जीवन में कई विधि-निषेध हैं—यह नहीं करो, वह नहीं करो अथवा यह करो, वह करो—सुबह से शाम तक हमलोगों का जीवन एक शृंखला में बंधा है। हमलोगों के सामने परिवर्तन का मार्ग कहाँ है? स्वामीजी ने यह सब देख कर कहा था, तोड़ दो इन सब नियमों को, मुक्त होओ, मुक्त होओ। वस्तुत: असंख्य नियम और नियमों का बन्धन हमलोगों के लिए शुभ नहीं है। इसके परिणाम स्वरूप हमलोगों की सृजनात्मक क्षमता में, हमलोगों के स्वाधीन चिन्तन में, हमलोगों के पथ पर चलने में बाधा खड़ी हुई है।

सब से पहले श्रीकृष्ण ने आध्यात्मिक जगत से यह क्रान्तिकारी मुक्तिमंत्र फैलाया था। इसके बाद विवेकानन्द में इस चिन्तन की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ी। एक उदात्त आह्वान। उत्तर नहीं देने का कोई उपाय नहीं है। मुझे लगता है कि वर्तमान जागरण के द्वारा भारत और सारे भारतवासी अभीष्ट लक्ष्य की ओर आगे जाएँगे। नवीन चिन्तन से जाग्रत-चित्र उभरेगा। प्रत्येक मनुष्य अपने स्वीकृत आत्म-सम्मान में प्रतिष्ठित होगा। और सबसे बढ़कर सामाजिक एकता एक सुदृढ़ धागे में गूँथ जायगी। हमलोग जिस परिवर्तन से गुजर रहे हैं, उससे प्रतीत होता है कि उस नवजागरण में और अधिक देर नहीं है।

देश : यह जो नया युग आ रहा है, उसमें रामकृष्ण—विवेकानन्द की भावधारा की एक विशेष भूमिका है। कई लोगों के मत से, जो नया युग आयगा या आ रहा है, वह केवल रामकृष्ण- विवेकानन्द की भावधारा का अवलम्बन लेकर ही। इस क्षेत्र में भारतवर्ष की सनातन परम्परा की क्या कोई भूमिका ही नहीं है?

रंगनाथानन्द : मेरे विचार से, दोनों को ग्रहण कर ही आ रहा है। केवल परम्परा को ग्रहण कर जो आयगा उसमें वैसी कोई शक्ति नहीं रहेगी। किन्तु नव प्रेरणा का संचार करनेवाली रामकृष्ण-विवेकानन्द की भावधारा के साथ परम्परा के मिलने से जो रूपान्तर होगा वह बहुत अधिक शक्तिशाली और गतिशील होगा।

देश : यहाँ एक और प्रश्न उठ सकता है - सनातन परम्परागत उपदेशों ने भारत की मिट्टी में कई युगों से अपनी जड़ें जमा रखी हैं। उन्हें और नये रूप में ढालने की जरूरत नहीं है। किन्तु, रामकृष्ण-विवेकानन्द की नव प्रेरणामय भावधारा अभी तक देश के सभी हिस्सों में पहुँच नहीं सकी है। कई ऐसे लोग हैं जिन्होंने अबतक भी इस अमृत का पता नहीं पाया है। दुर्गम गाँवों में, पहाड़ों पर, जंगलों में जो लोग रहते हैं और नगरों, उप-

नगरों में जो शिक्षाप्राप्त लोग रहते हैं—इन लोगों की चिन्तन भावना में आरम्भ से ही अन्तर सूचित होगा कि नहीं ? एक आदमी सनातन विचारधारा के अतिरिक्त और कुछ नहीं जानता, दूसरा व्यक्ति नये भावों की रोशनी में डूबा हुआ है—यह विभेद नवजागरण के कार्य में क्या बाधा नहीं उत्पन्न करेगा ?

रंगनाथानन्द : विभेद थोड़ा होगा ही । जब 'नवीन' कौन सी वस्तु है इसे हमलोग नहीं जानते, तब स्वभावतः हमलोग अपने संरक्षणशील मनोभाव से प्राचीन को पकड़े रहने की चेष्टा करेंगे, भले ही हमलोग अच्छी तरह जानते हैं कि पुरातन में उतनी शक्ति नहीं है । किन्तु यह सामयिक अवस्था है । नयी वस्तु को पहचानने के लिए कुछ दिनों तक हमलोग पुरानी वस्तु को पकड़ें रहने की चेष्टा करेंगे । फिर मनुष्य की निपुणता ही यह है कि वह पुराने को सहज ही नहीं छोड़ना चाहता है । नवीन के प्रति मनुष्य में एक स्वाभाविक प्रतिरोध की कामना रहती है । किन्तु इस प्रतिरोध को काट डालने को वह बाध्य है । नवीन से भागकर प्राचीन की गोद में अधिक दिनों तक मुँह छिपाकर रहा नहीं जा सकता । नये को वरण करने के लिए एक न एक दिन मनुष्य को साहसी होना ही होगा । नयी शिक्षा में जो प्राणशक्ति है वही शक्ति लोगों को एक दिन प्राचीन की अन्धकारपूर्ण गुफा से नूतनता के प्रकाश में खींच कर ले ही आयगी । हमलोगों की अभी जो अवस्था है वह है लोगों को भय की अवस्था । अनेक शताब्दियों की जड़ता में निमग्न देश को विवेकानन्द जिस शक्ति से स्पन्दित कर गये हैं, उस शक्ति की हमलोग कभी भी उपेक्षा नहीं कर सकेंगे । स्वामीजी हमलोगों की जड़ता का अनुभव कर सके थे । अतएव, नवीनता का, नये भारत का जो आदर्श रूप भविष्य में विकसित होगा वह इस रामकृष्ण-विवेकानन्द की भावधारा का अवलम्बन लेकर ही । हाँ, इसकी आधारभूमि पर भारत की प्राचीन परम्परा भले ही रहेगी ।

इस क्रान्तिकारी भावधारा को सब तक पहुँचने में थोड़ा समय लगेगा । हाँ, इसमें सन्देह नहीं कि यह भावादर्श भारतवर्ष के जन-जीवन पर प्रति दिन धीरे-धीरे धुएँ की तरह फैलता जा रहा है । कोई भी इसके बाहर नहीं रह सकेगा ।

देश : अर्थात् अन्त तक सम्पूर्ण देश इस भावधारा को ग्रहण करेगा, इस से पुष्ट होगा और नवजीवन के स्पर्श से संजीवित हो उठेगा ।

रंगनाथानन्द : निश्चय ही । हाँ, तब थोड़ा समय चाहिए । क्योंकि भावजागरण का कार्य सभी युगों में और सभी देशों में थोड़ा धीरे-धीरे होता है । किसी व्यक्ति में मानसिक परिवर्तन सहज ही नहीं किया जा सकता । किन्तु एक न एक दिन होगा ही । इसका कारण यह है कि महापुरुषों की विचारधारा में एक अद्भुत् परिवर्तनकारी क्षमता होती है । भारतवर्ष के चिन्तन क्षेत्र में एकाधिक महापुरुषों के चिन्तन का ऐश्वर्य प्रगाढ़ रूप से जमा हुआ है । उसके प्रभाव का प्रतिरोध नहीं हो सकता । वही अदृश्य प्रभाव धीरे-धीरे जन समूह के विभिन्न हिस्सों में, विचार जगत में क्रान्ति ले आएगा । हमलोगों का कार्य होगा महापुरुषों की भावधाराओं को सुसम्बद्धकर सम्पूर्ण भारत की धरती पर उन्हें शीघ्र फैला देना ।

विवेकानन्द ने १८९६ ई० में लन्दन में प्रैक्टिकल वेदान्त (व्यावहारिक जीवन में वेदान्त) विषय पर जो व्याख्यान दिया था, वह यहाँ स्मरण करने योग्य है । उसमें उन्होंने कहा था, 'लेट मैन थिंक ।' मनुष्य को चिन्तन करने दो । चिन्तन से ही सभी प्रगतियाँ आती हैं । मिट्टी का ढेला चिन्तन नहीं करता, चिन्तन मनुष्य करता है । आदमी चिन्तन करता है, आदमी भूल करता है, फिर आदमी ही भूल से पार भी हो जाता है । मनुष्य अपनी मानवीय सीमाओं का अतिक्रमण करने की क्षमता भी रखता है । स्वामीजी चाहते थे, भारतवर्ष के निवासी चिन्तन करना सीखें । सभी लोग सोचें—यह जीवन क्या है, मानवता क्या है, जन गण के प्रति हमलोगों का

कर्तव्य क्या है ! इस प्रकार के सोच से जो बोध और विश्वास उत्पन्न होते हैं उनकी अपार शक्ति होती है। स्वामीजी ने तो कहा था, "ग्रेट कन्विकशन्स आर मदर्स ऑफ ग्रेट डीड्स"। महती आस्थाएँ महान कार्यों की जननी हैं।

जहाँ दृढ़ विश्वास नहीं है, वहाँ केवल मत ही रहता है। आज के भारत में अनेक मत हैं, किन्तु प्रत्यय या विश्वास नहीं है। विश्वास या प्रत्यय ही मनुष्य को शक्ति देता है। जैसे महात्मा गाँधी को असीम राजनैतिक प्रत्यय था - जिसके फलस्वरूप वे एक एकाकीशक्ति बन गये थे। आज के भारत में विश्वास नहीं है, केवल मत-वाद ही है। शक्तिहीन मतवाद की आपाधापी में भारत विमूढ़ हो गया है। सुख की बात फिर यही है कि उस विश्वास की शक्ति पुनर्जागरित हो रही है। असीम विश्वास मतवाद को क्रमशः दूर कर अपना स्थान बना रहा है। विश्वास बढ़ रहा है, बढ़ रहा है, बढ़ रहा है।

(क्रमशः)

●

श्रीकृष्ण जन्मोत्सव के अवसर पर

गीता में क्या है ?

—स्वामी हर्षानन्द

अध्यक्ष, रामकृष्ण मठ, इलाहाबाद

गीता का पूरा नाम 'श्रीमद्भगवद्गीता' है। हमारे धर्म में गीता का ऐसा ताना-बाना है कि यह माना जाता है कि गीता के बिना हिन्दू धर्म का कोई अस्तित्व नहीं है। इस पर भी गीता में है क्या ? बहुतों को इस प्रश्न का उत्तर मालूम नहीं।

महाभारत पाँचवा वेद माना जाता है ; उसके भीष्म पर्व में अध्याय २५-४२ में श्रीकृष्णार्जुन के संवाद के रूप में यह गीता है। इसके कुल ७०० श्लोक हैं।

गीता की इस प्रसिद्धि का कारण क्या हैं ? यह उपदेश श्रीकृष्ण का दिया हुआ है। श्रीकृष्ण महापुरुष गिने जाते हैं, परमात्मा का अवतार माने जाते हैं। पराक्रमी और परमभक्त अर्जुन को यह उपदेश दिया गया है। इसमें उठाये गये प्रश्नों का जीवन में निभाये जानेवाले कर्तव्यकर्मों से गहरा सम्बन्ध था। उन प्रश्नों का जो उत्तर दिया गया वह तब भी सही था, आज भी सही है और आगे भी सही रहेगा। इसीलिए गीता उप-निषत्, ब्रह्मविद्या और योगशास्त्र कही गयी है। अध्यात्म के रहस्यदर्शन से संबंधित होने से यह उपनिषत् है। परब्रह्म का निरूपण करने से ब्रह्मविद्या है। साधनापरक होने से योगशास्त्र है। यही कारण है कि विश्व की प्रमुख भाषाओं में इसका अनुवाद हुआ है।

गीता का आरंभ कुरुक्षेत्र की रणस्थली में नाटकीय ढंग से होता है। युद्ध से पहले अर्जुन उत्साह के साथ लड़ने के इरादे से वहाँ गये थे। सामने कौरवों की सेना में उन्होंने आचार्य द्रोण, पितामह भीष्म आदि गुरुजनों, स्वजनों को देखा। उनका मन अधीर हो उठा। राजत्व के क्षणिक सुख के लिए गुरुजनों की हत्या का घोर पाप करने को वे तैयार नहीं थे। विषण्ण होकर उन्होंने निश्चय किया कि मैदान से हट जाऊँगा और भीख ही माँगकर जीवन बिताऊँगा।

श्रीकृष्ण ने ढाढ़स बँधाया कि 'यह हृदय की क्षणिक दुर्बलता है, आर्यों के लिए उचित नहीं है और यह पौरुष-

हीन व्यक्तियों का आचरण है। इसलिए उठो, लड़ो।' इतने पर भी अर्जुन लड़ने को राजी न हुए। उनका मोह दूर करने के लिए ही श्रीकृष्ण को यह उपदेश देना पड़ा।

संक्षेप में अर्जुन के कथन का सार यह है कि हत्या करना घोर पाप है। राज्यप्राप्ति जैसे स्वार्थ की पूर्ति के लिए गुरुजनों की, भाइयों की और सगे सम्बन्धियों की हत्या तो घृणित कर्म है। अतः ऐसे नीच कर्म में प्रवृत्त होने की अपेक्षा भीख माँग कर जीवन यापन करना अच्छा है।

श्रीकृष्ण ने इसका जो उत्तर दिया है वह सीधा है, स्पष्ट है। यहाँ का मुख्य मुद्दा वास्तव में यह नहीं है कि हत्या करें या न करें। असल में जो मुद्दा है वह यह कि दुराशा से प्रेरित होकर निजी स्वार्थ के लिए किसी को, कैसी भी, कुछ भी, बलि चढ़ाने पर उतारू उद्धतों को लोकहित की दृष्टि से दंडित किया जाय या नहीं। साम, दाम, भेद आदि उपायों का प्रयोग विफल हो गया। दंड ही एक मात्र उपाय रह गया। उसके प्रयोग द्वारा अधर्मियों और अधर्म का उन्मूलन करके धर्म की स्थापना क्षत्रिय का, उच्च राजकुल के क्षत्रिय का, पवित्र कर्त्तव्य है। इस कर्त्तव्य-पालन में या तो सफल होना है या अपने को होम देना है। इन दो रास्तों के अलावा उनके लिए और कोई विकल्प नहीं है। यह दायित्व न निभाया तो उन्हें अपयश का भागी बनना होगा। कुलीन व्यक्ति के लिए अपयश मृत्यु से भी भयावह है।

अब रह गया हत्या करने का सवाल। यों तो मूलतः हम सब आत्मा हैं। जन्म, विकास, रोग, बुढ़ापा, मृत्यु आदि का आत्मा से कोई संबंध नहीं है। इन स्थित्यंतरों का प्रभाव देह पर पड़ता है, अस्थायी रूप से देह में रहने-वाले देही पर नहीं पड़ता। यह तथ्य जानते हुए, ज्ञानी को अविचल मन से अपना कर्तव्य निभाना है। मान लो, देह के साथ ही जन्म और मृत्यु का भी संबंध है। यह जब अनिवार्य है तो इसके लिए शोक करना व्यर्थ है।

संसार में जन्म लिया है तो हर एक को कोई न कोई काम करना ही है। अपने जिम्मे जो भी काम हो, वह कितना भी अप्रिय क्यों न हो, उसे तो पूरा करना ही होगा। श्रीकृष्ण ने इसी को 'स्वधर्म' कहा है। कर्म पर अपना जो मोह है उसी से सुख या दुःख का अनुभव होता है। अनुकूल फल से सुख-संतोष होता है। प्रतिकूल फल मिला तो दुःख है, असंतोष है। फल की आशा से या फल के लिए ही कर्म करने की प्रवृत्ति का परित्याग करते हुए, सहज कर्तव्य बुद्धि से, लोकहित की दृष्टि से, ईश्वरार्पित मन से, जो कर्म किया जाता है उससे फल तो मिलेगा ही, उससे भी अधिक मन को शान्ति मिलेगी। निष्काम कर्म या कर्म योग की यह भावना ही श्रीकृष्ण की अनुपम देन कही जा सकती है।

इसी अवसर पर श्रीकृष्ण की एक और महती देन है। वह है यज्ञ की कल्पना का विस्तार। उस युग में यज्ञ-याग आदि धर्म के मुख्य अंग थे। श्रीकृष्ण ने यज्ञ की कल्पना अपना ली और उसे व्यापक स्वरूप प्रदान किया। यज्ञ का आशय केवल अग्नि को अर्पित आहुति नहीं। समष्टि से उऋण होने के लिए व्यष्टि और समाज से, प्रकृति से ऋणमुक्त होने के लिए व्यक्ति जो कुछ करता है, वही यज्ञ है। निर्धन को धनी द्वारा दिया गया दान 'द्रव्ययज्ञ' है, अज्ञानियों को ज्ञानी द्वारा मिला ज्ञान 'ज्ञानयज्ञ' है तथा तपस्वी या सिद्ध पुरुष द्वारा दूसरों में वितरित तपोबल ही 'तपोयज्ञ' है।

लोकसंग्रह के लिए, लोकहित के लिए, यज्ञ-भावना से कर्तव्य-कर्म करनेवालों को गीता में 'श्रेष्ठ' कहा गया है। ऐसे नेताओं या श्रेष्ठों को चाहिए कि वे आध्या-त्मिक विकास के पथ पर धीमी चाल से चलनेवालों को उनकी आस्था हिलाये बिना, आगे बढ़ने दें। इसलिए इन व्यक्तियों को सतर्क रहना चाहिए, चौकन्ना होना चाहिए। सतत जागरूक रहना चाहिए।

विस्तार से कर्तव्य-कर्म का प्रतिपादन करने पर भी गीता मुख्यतः अध्यात्मशास्त्र है, मोक्षशास्त्र है। अतः इसमें मोक्षमार्ग का भी पर्याप्त विवेचन मिलता है। इस

दृष्टि से भी श्रीकृष्ण की देन बड़ी मौलिक है। उपनिषदों में आत्मज्ञान पाने के लिए वैराग्य के साथ-साथ सर्वकर्मसंन्यास और ज्ञानयोग का महत्व प्रतिपादित है। कर्म की निंदा की गयी है। भक्तियोग, ध्यानयोग की कहीं कहीं झलक भर मिल जाती है। पर गीता में विस्तार से श्रीकृष्ण ने सबका योगों का उपदेश ही नहीं, एक ही योग मार्ग की अलग अलग शाखाओं के रूप में उनका समन्वय भी किया है। साधक अपनी प्रवृत्ति के अनुरूप किसी एक मार्ग को अपनाते हुए अन्य शाखाओं को भी उसके अंग के रूप में ग्रहण कर सकता है।

साधारण साधक की दृष्टि से कहना हो तो कह सकते हैं कि भगवान के अवतार की संभावना और उसकी सच्चाई का उद्घोष ही श्रीकृष्ण का बड़ा आशावादी संदेश है। अधर्म के बढ़ने और धर्म के घटने पर संसार में नारायण नररूप में अवतरित होते हैं और दुष्टदलन और शिष्टपालन के साथ-साथ उज्ज्वल रूप में फिर से धर्म की स्थापना करते है। यही अवतरण है। और प्रभु का प्रकट रूप ही अवतार हैं। इन अवतारों के लिए न देश-काल की सीमा है, न इनकी संख्या ही सीमित है।

जहाँ भी, जब भी, जितनी भी बार आवश्यक होने पर उतनी ही बार धर्म की रक्षा होने तक प्रभु अवतार लेने को तैयार रहते है। ऐसे अवतारी पुरुषों की शरण में अनन्य भाव से रहने में सुख मिल सकता है।

यही गीता का सार है। अलग-अलग प्रसंगों में अर्जुन द्वारा पूछे गये इतर प्रश्नों के उत्तर में गीता में और भी कई विषयों का विवरण है। पर गीता का अर्थ लगाने और उसका संदेश जीवन में उतारने के लिए ये विवरण आवश्यक नहीं हैं।

एक स्त्री से उसकी एक सखी ने पूछा था, 'क्यों सखी, तेरा तो पति आया है, भला बता तो सही, पति के आने पर कैसा आनन्द मिलता है? उस स्त्री ने कहा, 'यह तो तू तभी समझेगी जब तेरे भी स्वामी होगा; इस समय मैं तुझे भला कैसे समझाऊँ!' पुराण में है, भगवती जब हिमालय के यहाँ पैदा हुई तब माता ने गिरिराज को अनेक रूपों से दर्शन दिया। गिरीन्द्र ने सब रूपों के दर्शन करके भगवती से कहा, 'बेटी, वेद में जिस ब्रह्म की बात है, अब मुझे उस ब्रह्म के दर्शन हों।' तब भगवती ने कहा, 'पिताजी, अगर ब्रह्म के दर्शन करना चाहते हो तो साधुओं का संग करो।' ब्रह्म क्या वस्तु है यह मुख से नहीं कहा जा सकता। एक ने कहा था, 'सब जूठा हो गया है, पर ब्रह्म जूठा नहीं हुआ।' इसका अर्थ यह है कि वेदों, पुराणों, तन्त्रों और शास्त्रों का मुख से उच्चारण करने के कारण वे सब जूठे हो गये हैं ऐसा कहा जा सकता है, परन्तु ब्रह्म क्या वस्तु है, यह कोई अभी तक मुख से नहीं कह सका। इसीलिए ब्रह्म अभी तक जूठे नहीं हुए। सच्चिदानन्द के साथ क्रीड़ा और रमण कितने आनन्दपूर्ण हैं, यह मुख से नहीं कहा जा सकता। जिसे यह सौभाग्य मिला है वही जानता है।"

—श्रीरामकृष्णदेव

वैराग्य

—स्वामी ब्रह्मेशानन्द
रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

आध्यात्मिक युद्ध का दूसरा महास्त्र है वैराग्य। चित्त रूपी नदी के प्रवाह को विषयों की ओर न जाने देने के लिये वैराग्य एक बांध के समान है। किसी खेत में पानी लाने के लिए जिस प्रकार नहर के साथ उसका संयोग करने के साथ ही साथ मुंडेर में बने छिद्रों को बन्द करना भी आवश्यक है, उसी तरह चित्तवृत्तियों को रोककर ईश्वराभिमुखी करने के अभ्यास के साथ-ही-साथ आसक्तियों एवं भोगेच्छाओं रूपी छिद्रों को बन्द करना भी आवश्यक है। चलती मोटर को रोकने के लिए ब्रेक लगाने के साथ-ही-साथ उसके ईंधन में जा रहे पेट्रोल को भी बन्द करना होगा। अभ्यास यदि ब्रेक लगाना है, तो पेट्रोल के प्रवाह को बन्द करना मानो वैराग्य है। अभ्यास यदि सकारात्मक साधना है, तो वैराग्य निषेधात्मक। और दोनों ही, साधना के अनिवार्य एवं महत्वपूर्ण अंग हैं। इन दोनों की आवश्यकता समग्र साधना-काल में बनी रहती है। साधक को संसार में रहना है, सांसारिक विचार एवं आसक्तियाँ बाहर से तथा उसके स्वयं के पूर्व संस्कारों के कारण निरन्तर आती रहेंगी—उन्हें बार-बार साफ करना होगा—उसे यह सदा देखना होगा कि वैराग्याग्नि सांसारिक कूड़े-कर्कट से कहीं बुझ न जाए।

शंकराचार्य के अनुसार वैराग्य एवं मुमुक्षुत्व साधन-चतुष्टय के सबसे महत्वपूर्ण अंग हैं। जिसके ये दोनों तीव्र होते हैं, उसमें ही शम, दम, उपरति, तितिक्षा एवं समाधान फलवान होते हैं। वैराग्य की तीव्रता के अभाव में ये षट्संपत्तियाँ मरुभूमि में जल के समान भान मात्र होती हैं।

> वैराग्यं च मुमुक्षुत्वं तीव्रं यस्य तु विद्यते।
> तस्मिन्नेवार्थवन्तः स्युः फलवन्तः शमादयः॥
> एतयोर्मन्दता यत्र विरक्तत्वमुमुक्षयोः।
> [illegible] शमादेर्भानमात्रता॥

वैराग्य का अर्थ

वैराग्य का शाब्दिक अर्थ है राग का अभाव। जो चित्तवृत्ति सुख का अनुवर्तन करे, उसे राग कहते हैं। यह राग ही स्पृहा, तृष्णा एवं लोभ का रूप लेता है। राग का दूसरा रूप है द्वेष। यही क्रोध घृणा जिघांसा एवं मन्यु आदि का रूप लेता है। अतः वैराग्य का सम्पूर्ण रूप इन सभी का अभाव होता है।

विभिन्न शास्त्रकारों एवं आचार्यों ने वैराग्य की भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ दी हैं। महर्षि पतंजलि के अनुसार समस्त देखे अथवा सुने गये विषयों से वितृष्णा के वशीकार को वैराग्य कहते हैं। "द्रष्टानुश्रविक-विषय-वितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम्॥" इससे ही मिलती-जुलती परिभाषा वेदान्तसारकार ने दी है: "इहामुत्र फलभोग विरागः।" पुष्पमाल्य, चन्दन, वनिता आदि इहलोक की भोग-वस्तुओं तथा स्वर्गादि के अमृतादि वैभवादि दिव्य भोगों के प्रति सम्पूर्ण विरक्ति वैराग्य है। शंकराचार्य के अनुसार देह से ब्रह्मा पर्यन्त में विचार द्वारा अनित्यत्व देखकर उन्हें त्यागने की जो इच्छा उत्पन्न होती है वही वैराग्य है। जो व्यक्ति श्रुति, स्मृति एवं युक्ति के सहारे संसार के मिथ्यात्व का चिन्तन करता है, उसे संसार के विषय असत्, तुच्छ एवं बन्धन के कारण प्रतीत होते हैं। इसके साथ तीव्र मोक्ष की इच्छा होने पर विषयों से विरसता उत्पन्न होती है। यही वैराग्य है।

उपर्युक्त परिभाषाओं में वैराग्य को संज्ञा या एक बुद्धिवृत्तिविशेष, विरति, वैरस्यं अथवा त्यागने की इच्छा कहा गया है। यह समझ लेना अत्यन्त आवश्यक है कि वैराग्य एक मनोवृत्ति विशेष है, बाह्य त्याग से उसका कोई सम्बन्ध नहीं। कोई व्यक्ति बाह्य दृष्टि से पूर्ण त्यागी होते हुए भी वैराग्य-रहित हो सकता है और दूसरा व्यक्ति विषयों के बीच रहता हुआ भी पूर्ण विरक्त हो सकता है।

वैराग्य

—स्वामी आप्रेशानंद
रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

आध्यात्मिक युद्ध का दूसरा महास्त्र है वैराग्य। चित्त रूपी नदी के प्रवाह को विषयों की ओर न जाने देने के लिये वैराग्य एक बाँध के समान है। किसी खेत में पानी लाने के लिए जिस प्रकार नहर के साथ उसका संयोग करने के साथ ही साथ मुंडेर में बने छिद्रों को बन्द करना भी आवश्यक है, उसी तरह चित्तवृत्तियों को रोककर ईश्वराभिमुखी करने के अभ्यास के साथ-ही-साथ आसक्तियों एवं भोगेच्छाओं रूपी छिद्रों को बन्द करना भी आवश्यक है। चलती मोटर को रोकने के लिए ब्रेक लगाने के साथ-ही-साथ उसके ईंधन में जा रहे पेट्रोल को भी बन्द करना होगा। अभ्यास यदि ब्रेक लगाना है, तो पेट्रोल के प्रवाह को बन्द करना मानो वैराग्य है। अभ्यास यदि सकारात्मक साधना है, तो वैराग्य निषेधात्मक। और दोनों ही, साधना के अनिवार्य एवं महत्वपूर्ण अंग हैं। इन दोनों की आवश्यकता समग्र साधना-काल में बनी रहती है। साधक को संसार में रहना है, सांसारिक विचार एवं आसक्तियाँ बाहर से तथा उसके स्वयं के पूर्व संस्कारों के कारण निरन्तर आती रहेंगी—उन्हें बार-बार साफ करना होगा—उसे यह सदा देखना होगा कि वैराग्याग्नि सांसारिक कूड़े-कर्कट से कहीं बुझ न जाए।

शंकराचार्य के अनुसार वैराग्य एवं मुमुक्षुत्व साधन-चतुष्टय के सबसे महत्वपूर्ण अंग हैं। जिसके ये दोनों तीव्र होते हैं, उसमें ही शम, दम, उपरति, तितिक्षा एवं समाधान फलवान होते हैं। वैराग्य की तीव्रता के अभाव में ये षट्संपत्तियाँ मरुभूमि में जल के समान भान मात्र होती हैं।

वैराग्यं च मुमुक्षुत्वं तीव्रं यस्य तु विद्यते।
तस्मिन्नेवार्थवन्तः स्युः फलवन्तः शमादयः॥
एतयोर्मन्दता यत्र विरक्तत्वमुमुक्षयोः।
[illegible] शमादेर्भानमात्रता॥

वैराग्य का अर्थ

वैराग्य का शाब्दिक अर्थ है राग का अभाव। जो चित्तवृत्ति सुख का अनुवर्तन करे, उसे राग कहते हैं। यह राग ही स्पृहा, तृष्णा एवं लोभ का रूप लेता है। राग का दूसरा रूप है द्वेष। यही क्रोध घृणा जिहासा एवं मन्यु आदि का रूप लेता है। अतः वैराग्य का सम्पूर्ण रूप इन सभी का अभाव होता है।

विभिन्न शास्त्रकारों एवं आचार्यों ने वैराग्य की भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ दी हैं। महर्षि पतंजलि के अनुसार समस्त देखे अथवा सुने गये विषयों से वितृष्णा के वशीकार को वैराग्य कहते हैं। **"दृष्टानुश्रविक-विषय-वितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम्॥"** इससे ही मिलती-जुलती परिभाषा वेदान्तसारकार ने दी है: **"इहामुत्र फलभोग विरागः।"** पुष्पमाल्य, चन्दन, वनिता आदि इहलोक की भोग-वस्तुओं तथा स्वर्गादि के अमृतादि वैभवादि दिव्य भोगों के प्रति सम्पूर्ण विरक्ति वैराग्य है। शंकराचार्य के अनुसार देह से ब्रह्मा पर्यन्त में विचार द्वारा अनित्यत्व देखकर उन्हें त्यागने की जो इच्छा उत्पन्न होती है वही वैराग्य है। जो व्यक्ति श्रुति, स्मृति एवं युक्ति के सहारे संसार के मिथ्यात्व का चिन्तन करता है, उसे संसार के विषय असत्, तुच्छ एवं बन्धन के कारण प्रतीत होते हैं। इसके साथ तीव्र मोक्ष की इच्छा होने पर विषयों से विरसता उत्पन्न होती है। यही वैराग्य है।

उपर्युक्त परिभाषाओं में वैराग्य को संज्ञा या एक बुद्धिवृत्तिविशेष, विरति, वैरस्यं अथवा त्यागने की इच्छा कहा गया है। यह समझ लेना अत्यन्त आवश्यक है कि वैराग्य एक मनोवृत्ति विशेष है, बाह्य त्याग से उसका कोई सम्बन्ध नहीं। कोई व्यक्ति बाह्य दृष्टि से पूर्ण त्यागी होते हुए भी वैराग्य-रहित हो सकता है और दूसरा व्यक्ति विषयों के बीच रहता हुआ भी पूर्ण विरक्त हो सकता है।

अतः वैराग्य को हम आन्तरिक संन्यास की उपमा भी दे सकते हैं।

वशीकार वैराग्य

पतंजलि वैराग्य की अपनी परिभाषा में एक महत्त्वपूर्ण शब्द का उपयोग करते हैं : वशीकार। व्यास भाष्य के अनुसार दिव्य विषयों के उपस्थित होने पर भी प्रसंख्यान की सहायता से अनाभोगात्मक एवं हेयोपादेय शून्य वृत्ति या निर्विकल्प (संकल्प रहित) बुद्धि विशेष ही वशीकार वैराग्य है। पारिभाषिक शब्दों से युक्त इस व्याख्या को समझ लेना चाहिए। विवेक की दृढ़ता अथवा सिद्धावस्था को **प्रसंख्यान** कहते हैं। पूर्ण रूप से विषयों में लिप्त रहना **आभोग** कहलाता है। अतः उपर्युक्त व्याख्या का यह अर्थ हुआ कि सांसारिक अथवा स्वर्ग के दिव्य विषयों के उपस्थित होने पर भी विवेक की दृढ़ता के कारण जब उन्हें हेय अथवा उपादेय कुछ भी न सोचे, तथा मन उसमें लिप्त न हो—तब जो निर्विकार मनः स्थिति है, वही वशीकार वैराग्य कहलाती है।

विषयों से आपात् उपरामता विभिन्न कारणों से हो सकती है। यदि कोई पेट भर भोजन कर ले तो उसके बाद उसकी मिष्ठान्न खाने की इच्छा न होगी। रोग के कारण मुँह का स्वाद चला जा सकता है अथवा अरुचि हो सकती है। किसी को जेल में बन्द कर दें, विषयों से दूर ही कर दें तो इसे वैराग्य नहीं कहा जाता। शारीरिक निष्क्रियता एवं वृद्धावस्था में इन्द्रियों के क्षीण होने पर भी भोग की क्षमता कम हो जाती है। इसे भी वैराग्य नहीं समझना चाहिए। वास्तविक वैराग्य—वशीकार वैराग्य तो वह है, जब तेजपूर्ण इन्द्रियों एवं मन के रहते, विषयों के उपस्थित रहने पर भी मन में कोई विचलन न हो, न त्यागने की इच्छा हो, न ग्रहण करने की।

वैराग्य का सबसे महत्त्वपूर्ण साधन विवेक है। श्रवण एवं मनन द्वारा विषयों के दोष देखते-देखते वैराग्य उदित होता है। लेकिन प्रसंख्यान में व्यक्ति विषयों के दोष का साक्षात् अनुभव करता है। विचार द्वारा यह जानना कि अग्नि जलाती है, और साक्षात् अग्नि से अंग के जल जाने पर उसकी जलन का अनुभव करना दोनों में महान अन्तर है। एक बार अग्नि की जलन का अनुभव करने के बाद विचार की आवश्यकता नहीं रहती। अतः किसी न किसी रूप में—चाहे वह भौतिक स्तर पर हो या मानसिक, या दोनों विषयों एवं प्रलोभनों का प्रत्यक्ष अनुभव कर—प्रयत्न एवं इच्छाशक्ति द्वारा उन्हें त्यागना आवश्यक है। अन्यथा वशीकार वैराग्य नहीं सधता। ऐसा साधक भोगों के उपस्थित होने पर चकित नहीं होता। वह उन्हें मानो कहता है कि "मैंने तुम्हारा अनुभव कर लिया है, मैं तुम्हें अच्छी तरह पहचानता हूँ, तुम मुझे प्रलोभित नहीं कर सकते।"

वैराग्य के प्रकार—

वैराग्य के तीन मुख्य प्रकार कहे जा सकते हैं।

१. **मर्कट-वैराग्य**—किसी आकस्मिक दुःखपूर्ण घटना द्वारा उत्पन्न अस्थिर एवं अल्पस्थायी वैराग्य मर्कट वैराग्य कहलाता है। इसका साधक के जीवन में कोई महत्त्व नहीं है।

२. **विविदिषा वैराग्य**—जिज्ञासु अथवा मुमुक्षु साधक जिस वैराग्य का अवलम्बन कर उसे धीरे-धीरे बढ़ाने का प्रयत्न करता है, वह चार प्रकार का होता है।

(i) **यतमान**—विवेक द्वारा धीरे-धीरे उत्पन्न हो रहा वैराग्य।

(ii) **व्यतिरेक**—कुछ विषयों से वैराग्य हो गया है, कुछ में अभी भी आसक्ति है—ऐसा वैराग्य व्यतिरेक कहलाता है।

(iii) **एकेन्द्रिय**—बाह्य विषयों की ओर इन्द्रियाँ तो नहीं जातीं, लेकिन मन में सूक्ष्म रस बना हुआ है।

(iv) **वशीकर**

३ **विद्वत् वैराग्य**—वैराग्य की सिद्धावस्था—इसे परवैराग्य भी कहते हैं। आत्म स्वरूप के साक्षात्कार होने पर त्रिगुणात्मक समस्त जगत् से जो विरति है, वही पर-वैराग्य की संज्ञा है—

"ततः परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम्" ॥

वैराग्य की उत्पत्ति—अधिकांश सांसारिक लोगों के जीवन में वैराग्य नहीं ...

वे सैकड़ों ठोकरें खाने पर भी विषय-विष की ज्वाला में जलते हुए भी कुछ नहीं सीखते। वे तो विष्ठा के कीड़ों की तरह हैं, जिन्हें यदि विष्ठा से बाहर निकाला जाय तो वे मर जायें। एक व्यक्ति जंगल में एक अंधे कुएँ में अचानक गिर गया। गिरते समय उसने किनारे के पेड़ की एक डाल, जो कुएं के ऊपर लटक रही थी, पकड़ ली। नीचे कुएँ में एक विषधर सर्प उसके गिरने की प्रतीक्षा कर रहा है। दो चूहे, जिस डाल से वह लटक रहा था, उसे काट रहें हैं। अचानक उसने ऊपर लगे एक मधुमक्खी के छत्ते से शहद टपकते देखा। यह देख वह जुबान निकालकर उस शहद को चाटने का प्रयत्न करने लगा। हम सभी का ठीक इसी प्रकार का हाल है। रात और दिन रूपी दो चूहे हमारी आयु को निरन्तर काट रहें हैं। मृत्यु रूपी काल-सर्प मुँह बाये खड़ा है, लेकिन हम फिर भी संसार के विन्दु मात्र मधु-भोग को छोड़ना नहीं चाहते।

कुछ भाग्यवान अधिकारी महापुरुषों के जीवन में वैराग्य अचानक उपस्थित होता है और वह स्थायी भी रहता है। कोई छोटी-सी आकास्मिक घटना ही उसकी वैराग्याग्नि को प्रज्ज्वलित कर देती है। तुलसीदास, विल्वमंगल, लाल बाबा, नानक, भगवान बुद्ध आदि इसके दृष्टान्त हैं। लेकिन अधिकांश लोगों को बार-बार संसार के थपेड़े खाने के बाद वैराग्य होता है। और उसके बाद विवेक एवं त्याग द्वारा उसे निरन्तर वर्धित करना होता है।

वैराग्य की साधना—

संसार के समस्त धर्म ग्रन्थ एवं सन्त साहित्य वैराग्य की बातों से भरे पड़े हैं। वे किसी न किसी रूप में वैराग्योद्दीपक ही हैं। अतः प्रस्तुत लेख में वैराग्य की वृद्धि के कुछ उपायों का संकेत मात्र किया जायेगा।

(१) वैराग्य के महत्व को मन में दृढ़ करना— अधिकांश साधक वैराग्य की आवश्यकता के विषय में इतने कृत निश्चय नहीं होते जितना होना चाहिए। वे भगवान को पाना तो चाहते हैं लेकिन संसार को छोड़ना नहीं चाहते। ये दोनों कार्य एक साथ नहीं हो सकते। अथवा उनके मन में यह स्पष्ट धारणा नहीं होती कि भगवान को पाने के लिए संसार के स्थूल एवं सूक्ष्म सभी भोगों का, अपनी समस्त इच्छाओं, वासनाओं, एवं आसक्तियों का त्याग करना ही होगा। इसके अलावा दूसरा कोई मार्ग न आज तक हुआ है, और न होगा। दो नावों पर पैर रखने से पार नहीं हुआ जा सकता। इस विषय में कभी मन को समझौता न करने दें। मन सदा ही हमें छलना चाहता है। वह भोगों की आवश्यकता-अनिवार्यता के लिए तर्क प्रस्तुत करता है। इससे सावधान रहें। दुर्बलतावश यदि हम आसक्तियों एवं भोगों को त्यागने में सफल न हो सकें, भोग करने के लिए बाध्य हों, तो भी मन ही मन यह जानें कि यह ठीक नहीं है, अन्ततोगत्वा इन्हें त्यागना होगा, एवं इसका दुष्परिणाम भी भोगना होगा।

(२) भगवदनुराग— जैसा कि पहले कहा जा चुका है वैराग्य एक निषेधात्मक सद्‌गुण है। इसका सकारात्मक पक्ष है ईश्वर के प्रति अनुराग। भगवत्-अनुराग होने पर संसार से वैराग्य, सहज-स्वाभविक रूप में हो जाता है। तब उसमें रिक्तता, एवं रूखापन नहीं होता। लेकिन दुर्भाग्य तो यह है कि भगवान के प्रति अनुराग होना भी आसान नहीं है। फिर भी भगवन्नाम का जप, लीलाश्रवण, भजन-कीर्तनादि भी करते रहना चाहिए, जिससे भगवान के प्रति प्रेम उपजे।

३ वैराग्यवान महापुरुषों का चिन्तन— सभी सन्त एवं अवतारी महापुरुष वैराग्यवान थे। उनमें करुणा, दया, प्रेम, निष्ठा, साहस आदि अन्य सद्‌गुण भी थे। यदि साधक में वैराग्य की कमी हो और उसे वह जीवन में लाना चाहे तो इन महापुरुषों की करुणा, दया आदि के बदले उनके चरित्र के त्याग और वैराग्य विषयक पक्ष का चिन्तन करे। उदाहरण के लिए चैतन्य महाप्रभु जितने महान भगवद्‌भक्त थे, उतने ही त्यागी एवं वैराग्यवान भी थे। उनकी भक्ति का चिन्तन करने के बदले उनके तीव्र वैराग्य एवं असीम त्याग का चिन्तन करना चाहिए।

४ विषयों का त्याग— जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि वैराग्य एक मनःस्थिति विशेष है, जिसका बाह्य त्याग से सम्बन्ध नहीं है। लेकिन व्यवहार में वैराग्य किसी न किसी मात्रा में बाह्य त्याग के बिना नहीं सधता। हम विषयों के बीच रहें और मन से अनासक्त, वैराग्यवान और भोगेच्छा रहित हों, यह सम्भव नहीं होता। अतः

विषयों से दूर रहना, उन्हें एक-एक करके त्यागना वैराग्य को दृढ़ करने में अत्यन्त सहायक होता है। स्थूल विषयों का बाह्य त्याग करने पर मन की सूक्ष्म वासनाओं को त्यागना आसान हो जाता है। अतः रूप रसादि के विषयों का धीरे-धीरे त्याग करना चाहिए। यतमान और व्यतिरेक वैराग्य इसी तरह सधता है।

दृष्टविषय त्याग—

घड़ी, पेन, पुस्तक, स्वादिष्ट भोज्य पदार्थ आदि से आसक्ति त्यागना आसान है। धनलिप्सा भी धीरे-धीरे कम की जा सकती है। लेकिन व्यक्तियों से, सांसारिक सम्बन्धियों से आसक्ति त्यागना अत्यन्त कठिन है। फिर भी साधक को माता, पिता, पत्नी, पुत्रादि के प्रति आसक्ति का त्याग करना ही होगा। ईसा मसीह का यह कथन कि यदि कोई व्यक्ति अपने माता, पिता, भाई, बहन को घृणा न करे और मेरे पास आये तो वह मेरा शिष्य नहीं हो सकता—अक्षरशः सत्य है। ईसा यहाँ एक बहुत कड़ा शब्द "घृणा" (Hate) का प्रयोग करते हैं। इसके पीछे निहित भाव यह है कि जब तक हमें अपने प्रियजनों के दोष न दिखें, जब तक वे हमें मित्र के बदले शत्रु न दिखें, तब तक मन उनकी ओर से पूर्ण विरत नहीं होता। कहीं न कहीं थोड़ा बहुत मन उनसे चिपका रह जाता है, जो साधक के लिए बाधक बन जाता है। साधक को तो उसका घर अंधकूप एवं परिवार के लोग काल-सर्प के समान लगते हैं।

"जाके प्रिय न राम वैदेही, तजिये ताहि कोटि बैरी सम यद्यपि परम सनेही। यह सिद्धान्त सभी वैराग्य के पथिक साधकों को याद रखना चाहिए। सगे सम्बन्धी आध्यात्मिक जीवन में सहायक हों, एसा विरले ही होता है। उन्हें सांसारिक विचारों को त्याग कर आध्यात्मिक दिशा में लाने का कभी-कभी प्रयत्न किया जा सकता है, लेकिन यह भी अधिकांश क्षेत्रों में सफल नहीं होता। ऐसे में साधक को निर्मम होने के अतिरिक्त और कोई उपाय ही नहीं रह जाता है।

यदि कोई सम्बन्धी आध्यात्मिक मनोवृत्ति वाला हो तो भी मन के छल से सावधान रहना चाहिए। मोहग्रस्त मन आसक्ति तथा विशुद्ध प्रेम में अन्तर नहीं कर पाता। इस विषय में यह सिद्धान्त श्रेयस्कर है कि विशुद्ध प्रेम केवल भगवान से ही हो सकता है। पहले भगवान को पूरे मन से प्रेम करें। उसके बाद, प्रभु के माध्यम से संसार के अन्य सभी प्राणियों से प्रेम किया जा सकता है। साधक यदि आसक्ति त्यागने में सफल न हो तो किसी भी हालत में उसे और न बढ़ावे। कर्त्तव्य-बोध, दूसरे का दिल न दुखाना, आदि की आड़ में मन की दुर्बलता को प्रश्रय नहीं देना चाहिए। वैराग्य का पथ कठिन पथ है, और साधक को इसकी पूरी कीमत चुकाने के लिए तत्पर रहना चाहिए।

अनुश्रविक विषय त्याग—

आधुनिक समय में स्वर्गादि की धारणाएं इतनी प्रबल नहीं रह गयी हैं जितनी कुछ शताब्दियों पहले थीं। पहले लोग मरने के बाद स्वर्गादि दिव्य भोगों की लालसा रखते थे। आधुनिक भौतिकवादी वैज्ञानिक युग में भोग की नाना प्रकार की सामग्रियाँ प्रतिदिन प्रस्तुत की जा रही हैं, जिनके बारे में सुनकर उपभोग करने की इच्छा लोगों के मन में होती है। विदेश-भ्रमण, अन्यदेशों में जाकर वहाँ के वैभव को प्राप्त करना व भोगना आदि अनेक विचार आधुनिक मानव को तीव्र गति से भोगवाद की ओर धावित कर रहे हैं। साधक को इनसे सावधान रहना होगा।

४. **सूक्ष्म भोग-त्याग**—पूर्वाचार्यों ने विषयों को 'दृष्ट-अनुश्रविक' एवं 'इह-अमुत्र' इन दो में विभक्त किया है। इन्हें हम 'स्थूल-सूक्ष्म' विषयों के रूप में देख सकते हैं। स्थूल विषय की लालसा को त्यागना आसान है, लेकिन मानव अनेक ऐसे सूक्ष्म भोग करता है, जिन्हें पहचानना तक कठिन होता है। नाम यश की लालसा, शास्त्राध्ययन का व्यसन, संगीत-कला, साहित्य सृजन का आनन्द, प्रवचन, उपदेशादि देने में सुख अनुभव करना आदि ऐसे हैं, जिन्हें साधक को त्यागना होगा। रूप-यौवन, स्वास्थ्य; मान-प्रभुता, सत्ता; ज्ञान, विद्या, पाण्डित्य; धन ऐश्वर्य समृद्धि; कला साहित्य संगीत; गुण कौशल सामर्थ्य; नाम यश; आशा आकांक्षा वासना; यहाँ तक कि प्रभु के द्वारा प्रदत्त आध्यात्मिक आनन्द के प्रति भी वैराग्यवान हुए बिना प्रभु को नहीं पाया जा सकता। प्रारम्भ में साधक से ऐसे उत्कट वैराग्य की आशा नहीं की जा सकती

यह जानकारी तो होनी ही चाहिए कि उसे आगे बढ़ने पर कैसा तीव्र एवं सूक्ष्म आध्यात्मिक युद्ध लड़ना होगा ।

९. विवेक भावनाएं—वैराग्य का सबसे प्रभावशाली उपाय है विवेक, विचार । विवेक के अभाव में ही सैकड़ों ठोकरें खाने के बाद भी लोगों के जीवन में वैराग्य का उदय नहीं होता । विचारशील व्यक्ति को थोड़े में ही वैराग्य हो जाता है। शास्त्रों में नित्यानित्य, आत्म-अनात्म दृक-दृश्य आदि अनेक प्रकार के विवेकों का वर्णन है। लेकिन वैराग्योद्दीपक विचार इनसे भिन्न हैं, एवं उन्हें भावनाओं की संज्ञा देना अधिक उचित होगा। ये भावनाएं अनेक प्रकार की हैं।

(i) भय भावना—संसार की सभी वस्तुएं भय संकुल हैं, इस प्रकार की भावना करने से वैराग्य होता है। भर्तृहरि ने अपने वैराग्य शतक में इसका सुन्दर वर्णन किया है।

भोगे रोगभयं कुले च्युतिभयं वित्ते नृपालाद्भयं,
माने दैन्यभयं बले रिपुभयं रूपे जराया भयम् ।
शास्त्रे वादिभयं गुणे खलभयं काये कृतान्ताद्भयं,
सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम् ॥

(ii) अशुचि भावना—देह-सुख की भावना को त्यागने के लिए अशुचि भावना का प्रयोग प्रसिद्ध है। नारी का शरीर हाड़ मांस, मज्जा आदि अशुचि पदार्थों से बना है, उसके भीतर मल, मूत्र, श्लेष्मा, रक्त और पीप आदि गंदे पदार्थ भरे हैं। ऐसा बार-बार सोचने से मन विषय-सुख से विरत हो जाता है। स्थूल देह स्थान, बीज उपष्टम्भ, प्रस्वेद, निधन और आधेय-शौचत्व इन छः कारणों से अशुचि है, लेकिन लोग सदा इससे चिपके रहते हैं।

स्थान—देह गर्भ जैसे अशुचि स्थान में, मल-मूत्र के बीच नौ माह तक पड़ी रहती है। उसकी उत्पत्ति के बीज, रज एवं शुक्र अशुचि हैं, एवं अशुचि मार्ग से निकलते हैं। शरीर, भुक्त पदार्थों का संघात है जो पड़े रहने पर सड़ते हैं एवं अन्त में मल-मूत्र में परिणत हो जाते हैं। लार, मूत्र, पसीना आदि शरीर से निकलते रहते हैं। मृत्यु होने पर कोई भी देह को अशुचि समझ कर स्पर्श नहीं करना चाहता। आधेय शौचत्वं—देह एक दिन भी स्वच्छ न रखी जाय तो बदबू आने लगती है। उसे प्रति-दिन साफ रखना पड़ता है। यही कारण है कि शौच नामक नियम में प्रतिष्ठित होने पर योगी को दूसरी देह के संसर्ग, संस्पर्श से घृणा हो जाती है।

(iii) अनित्य भावना—संसार के सभी पदार्थ, क्षणभंगुर हैं, अनित्य हैं। इस प्रकार के चिन्तन से भी वैराग्य होता है। इसी तरह दुःख-भावना में सभी विषय-सुखों के पीछे निहित दुःख का चिन्तन किया जा सकता है। विवेकी व्यक्ति के लिए संसार की सभी वस्तुएं परिणाम में, प्राप्ति के लिए प्रयत्न रूप ताप के कारण, भोग के संस्कार उत्पन्न होकर पुनः उस ओर प्रवृत्त करते हैं, इसलिए तथा सत्त्व, रजस्-तम इन गुणों के विरोध के कारण दुःखपूर्ण हैं।

परिणाम तापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्ति विरोधाच्च सर्वमेव
दुःखं विवेकिनाम् ।

(iv) पाप भावना—जिन लोगों की पाप-पुण्य नर्क-स्वर्ग की मान्यताएं प्रबल हैं, उनके लिए सांसारिक भोगों में पाप भावना से वैराग्य हो सकता है। लेकिन पाप भावना इतनी गहरी नहीं बैठती जितनी अशुचि अथवा ग्लानि की भावना ।

(v) ग्लानिभावना—स्वाभिमानी व्यक्ति में अपनी पूर्व कृत दुष्कृतियों के लिए क्षोभ एवं ग्लानि पैदा की जा सकती है। "ये विषय-भोग मुझे शोभा नहीं देते। मेरा जन्म उच्च कुल में हुआ है, मैं विषयों का दास होऊं, यह मुझे शोभा नहीं देता। छिः छिः मैं कितना पतित हो गया था"। इस प्रकार की क्षोभ-भावनाएं अत्यन्त प्रभावशाली होती हैं तथा अनेक साधकों को पतित होने से बचाती हैं।

उपर्युक्त भावनाएं उदाहरण के रूप में दी गयी हैं। इस तरह की अनेक भावनाएं रुचि-भेद से की जा सकती हैं। मुख्य बात है विषयों के दोष को देखना एवं विचार द्वारा उन्हें दृढ़ता से अपने मन में बैठाना। दूसरी ओर योग पथ, अध्यात्म पथ ही श्रेयस्कर है, इस प्रकार के विचार बार-बार करने से भी विषयों के प्रति आसक्ति समाप्त हो जाती है।

प्रस्तुत लेख में वैराग्य के सम्बन्ध में कुछ मूल-भूत बातें कही गयी हैं। विवेक चूड़ामणि एवं वैराग्य शतकम् जैसे प्रामाणिक ग्रन्थों के अध्ययन से पाठक अत्यधिक

संत तुलसीदास और श्रीरामकृष्णदेव

—कुमार विवेकानन्द

भारतीय साहित्याकाश के निर्मल चन्द्र, भक्तजन एवं साहित्य प्रेमियों के हृदय को अपनी विलक्षण कविता ज्योत्सना से उद्भासित करने वाले, भक्ति एवं प्रेम की सुधा बरसाने वाले संत तुलसीदास भारत एवं भारतेतर देशों में भी निश्चय ही प्रातः स्मरणीय एवं पूजनीय हैं। जॉर्ज ग्रियर्सन का कथन है कि ईसाई जनता में बाइबिल का जितना प्रचार है उससे अधिक रामचरितमानस का हिन्दू जनता में प्रचार और आदर है। इसका कारण यह है कि तुलसी ने अहंकारवश अथवा कीर्त्ति एवं कांचन की प्राप्ति के उद्देश्य से ग्रंथों की रचना नहीं की, वरन् ईश्वर की प्रेरणा से प्रेरित होकर, वैदिक ऋषियों की तरह सत्य के द्रष्टा के रूप में 'स्वांतः सुखाय' (स्वांतः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा भाषानिबन्ध मति मञ्जुलमातनोति) रचना की है। सरल भाषा में श्रीरामकृष्णदेव जिसे कहते थे 'चपरास प्राप्त होना' अर्थात् ईश्वरीय आदेश मिलना; तुलसी वही चपरास प्राप्त संत थे।

तुलसी के उपास्य तथा उनके ग्रंथों के नायक-नायिका श्रीराम तथा जगतजननी जानकी, जिनके संबंध में स्वामी विवेकानन्द ने अत्यन्त ही मर्मस्पर्शी भाषा में कहा है, "श्रीराम वीरगाथा काल के प्राचीन आदर्श, सत्य एवं नैतिकता के मूर्त्तरूप, आदर्श प्रजापालक थे।......और सीता का क्या कहना, ? तुम प्राचीन विश्व साहित्य को निःशेष कर डालो और मैं दावे के साथ कहता हूँ कि दूसरी सीता पाने के पूर्व तुम्हें भविष्य के विश्व साहित्य को निःशेष कर डालना होगा। सीता अद्वितीय हैं।......याद रखो, हमारी सारी पौराणिक कथाएँ भले ही लुप्त हो जायँ, यहाँ तक कि वेद भी न रहें, सदा के लिए हमारी संस्कृत भाषा भी लुप्त हो जाय, लेकिन जब तक पाँच हिन्दू, वह भी केवल गँवारू बोली बोलने वाले, बचे रहेंगे तो उनके मध्य सीता की कहानी अवश्य रहेगी। सीता हमारी नस-नस में समायी हुई हैं। हम सीता की संतान हैं।" अतः हिन्दू जनमानस पर तुलसी की रचनाओं का आश्चर्यजनक प्रभाव स्वाभाविक है।

तुलसी एवं श्रीरामकृष्ण के बीच काल की दूरी लगभग तीन सौ वर्षों की है। इस लम्बी अवधि में हिन्दी भाषी प्रांतों के अलावा भारत के अन्य प्रांतों में भी तुलसी की रचनाओं का प्रचार-प्रसार हो चुका था। जहाँ तक श्रीरामकृष्णदेव का सवाल है, उनकी जीवनी में कहीं यह स्पष्ट रूप से नहीं लिखा है कि उन्होंने तुलसीकृत रामचरितमानस अथवा उनकी अन्य रचनाओं का श्रवण किया था। लेकिन 'श्रीरामकृष्ण वचनामृत' तथा उनके अन्य संकलित उपदेशों में तुलसी के वचन तथा उक्तियाँ यत्र-तत्र मिलते हैं। इससे पता चलता है कि रामकृष्णदेव ने कभी न कभी, किसी न किसी प्रकार से गोस्वामी तुलसीदास की पंक्तियों का निश्चय ही श्रवण किया होगा। उनके साधनाकाल में उत्तर भारत से अनेक रामायत पंथी साधुओं का दक्षिणेश्वर में आगमन हुआ था, जिनसे उन्होंने तुलसी के अनेक भजनों तथा उपदेशों का श्रवण किया था। इसका उल्लेख हम आगे करेंगे। किन्तु यह सब दिखाने के पूर्व श्रीरामकृष्ण की अद्भुत आध्यात्मिक अवस्था, उनका दैवी स्वरूप तथा वेद-वेदांत, पुराणादि में वर्णित सत्यों के अप्रत्यक्ष द्रष्टा रूप पर भी विचार कर लेना आवश्यक है।

रामकृष्णदेव अद्भुत धर्म वैज्ञानिक थे। स्वामी

विवेकानन्द के अनुसार, "श्रीरामकृष्णदेव पूर्व कालीन श्रीयुग धर्म प्रवर्तकों के पुन: संस्कृत प्रकाश स्वरूप हैं। उनका आगमन शास्त्र को प्रमाणित करने के लिए तथा अनादि काल से विद्यमान, सृष्टि, स्थिति और लय कर्त्ता के सहयोगी शास्त्र, ऐहिक संस्कारों का जिन्होंने सम्पूर्ण परित्याग किया उन ऋषियों के हृदय में किस प्रकार स्वत: प्रकाशित होते हैं, उसे दिखाने के लिए हुआ है।" शास्त्र में वर्णित समस्त उच्च अवस्थाओं की अनुभूति के पश्चात् वे भगवती के आदेशानुसार 'भावमुख' अवस्था में रह रहे थे। श्रीरामकृष्ण लीला प्रसंग (द्वितीय भाग) में इसकी विशद चर्चा है। भावमुख अवस्था में रहने के कारण उन्हें समग्र जगत् सदा-सर्वदा भावमय प्रतीत होता था। भगवती ने श्रीरामकृष्ण को शरीरधारी होते हुए भी एकत्व की इतनी उच्च अवस्था में सदा के लिए स्थापित कर दिया था कि अनन्त विराट मन के भीतर जितने भावों का उदय हो रहा है, उन सभी भावों को उस स्थिति में अवस्थित रहकर वे सर्वदा अपना समझने लगे थे। इस कारण पूर्वकाल में भी ऋषियों के मन में जिन सत्य-समूहों का प्रकाश हुआ था वे उनके समक्ष स्वत: प्रकाशित हो जाते थे।

इसे स्पष्ट करने के लिए हम उनके जीवन की एक घटना का उल्लेख करते है। श्रीरामकृष्णदेव किसी को माया तथा ब्रह्म के संबंध में उपदेश दे रहे थे। अचानक वे समाधिस्थ हो गये एवं समाधि से नीचे उतरने के बाद बोले—"मैंने भावावस्था में हालदार पुकुर (एक तालाब) देखा। देखा, एक नीची जाति का आदमी काई हटाकर पानी पी रहा है। पानी सच्चिदानन्द ब्रह्म है तथा काई माया। यदि कोई सच्चिदानन्द रूपी जल का पान करना चाहता हो तो उसे माया रूपी काई को हटाना होगा।" श्रीरामकृष्ण के इस दर्शन की तुलना हम शंकराचार्य की विवेक चूड़ामणि में वर्णित निम्न श्लोकों से करते हैं —

कोशैरन्नमयाद्यै: पञ्चभिरात्मा न संवृतो भाति।
निजशक्ति समुत्पन्नैः शैवाल पटलैरिवाम्बु वापीस्थम्॥
तच्छैवालापनये सम्यक् सलिलं प्रतीयते शुद्धम्।
तृष्णा सन्तापहरं सद्य: सौख्यप्रदं परं पुंसः॥ (152)
पञ्चानामपि कोशानामपवादे विभात्ययं शुद्ध:।
नित्यानन्दैकरस: प्रत्यग्रूप: पर: स्वयंज्योति:॥ (152)

अर्थात् अन्नमय आदि पाँच कोशों से आवृत हुआ आत्मा, अपनी ही शक्ति से उत्पन्न हुए शैवाल-पटल से ढके हुए वापी के जल की भाँति नहीं भासता। जिस प्रकार उस शैवाल के पूर्णतया दूर हो जाने पर मनुष्यों की तृषारूपी ताप को दूर करने वाला तथा उन्हें तत्काल ही परम सुख-प्रदान करने वाला जल स्पष्ट प्रतीत होने लगता है, उसी प्रकार पाँचों कोशों का अपवाद करने पर यह शुद्ध, नित्यानन्दैक रस स्वरूप, अन्तर्यामी, स्वयंप्रकाश परमात्मा भासने लगता है।

श्रीरामकृष्ण के दर्शन तथा आचार्य शंकर के उपदेश की समानता स्पष्ट है। अत: श्रीरामकृष्ण के कुछेक उपदेश जो तुलसी के वचनों का हू-ब-हू उद्धरण नहीं हैं, तथापि जिनमें काफी समानता है, संभव है उनके 'भावमुख मन' के समक्ष स्वत: प्रकाशित हुए हों जिसे कभी तुलसी ने प्रत्यक्ष किया था। नीचे हम तुलसी के भजन एवं कुछ वचनों को उद्धृत करते हैं जिन्हें श्रीरामकृष्णदेव प्राय: अपने उपदेश के दौरान कहा करते थे।

श्रीरामकृष्ण लीला प्रसंग (द्वितीय भाग) में वर्णित है—"इस तरह कितने ही साधुओं की बातें श्रीरामकृष्ण देव हमसे कहा करते थे। कभी-कभी उन रामायतपंथी साधुओं से उन्होंने भगवान के जो भजन सीखे थे, उनको गाकर हमें सुनाया करते थे। यथा —

१. सीतापति रामचंद्र रघुराई।
... .

सखा सहित सरयूतीर, विहरे रघुवंश वीर,
तुलसीदास हरष निरखि चरणरज पाई॥

वे कहा करते थे, "साधु लोग चोरी, नारी तथा झूठ—इन तीन से सदा अपने को बचाने का उपदेश देते हैं।" यह कहकर ही पुन: वे कहते थे, "तुलसीदास जी के इन दोहों में क्या कहा है, सुनो—

२. सत्यवचन आधीनता पर धन उदास।
इसमें हरि ना मिलें तो जामिन तुलसीदास॥
सत्यवचन आधीनता परतिय मातु समान।
इससे हरि ना मिलें तुलसी झूठ जबान॥

"अधीनता क्या है जानते हो—दीनभाव। ठीक-ठीक दीनभाव के उदय होने पर अहंकार का नाश हो जाता है तथा ईश्वर की प्राप्ति होती है।"

'सत्य बोलना कलियुग की तपस्या है। इस काल में अन्य साधनों का अभ्यास कठिन है, परन्तु सत्य पर दृढ़ रहने से मनुष्य ईश्वर को प्राप्त कर लेता है। (वचनामृत) "मेरा मातृ भाव है। ·····सच्चा संन्यासी स्त्रियों की ओर ऐहिक दृष्टि से नहीं देखता। वह सदा स्त्रियों से दूर रहता है, और यदि उसके पास कोई स्त्री आये तो वह उसे माता के समान देखता है।"

3. सुरभ सौरभ धूप दीपवर मालिका।
उड़त अघविहंग सुनि ताल करतालिका॥
(विनयपत्रिका)

वह सुन्दर सुगन्ध युक्त धूप और श्रेष्ठ दीपकों की माला है। आरती के समय हाथों से बजायी जानेवाली थाली का शब्द सुनकर पापरूपी पक्षी तुरन्त उड़ जाते हैं। श्रीरामकृष्णदेव कहते थे—"सुबह शाम ताली बजाते हुए हरिनाम गाया करो' ऐसा करने से तुम्हारे सब पाप-ताप दूर हो जाएँगे। जैसे पेड़ के नीचे खड़े होकर ताली बजाते हुए हरिनाम लेने से देह रूपी वृक्ष पर से सब अविद्या की चिड़ियाँ उड़ जाती हैं।"

४. भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ।
नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ। (बालकाण्ड)

अच्छे भाव से, बुरे भाव से, क्रोध से या आलस्य से किसी तरह से भी नाम जपने से दशों दिशाओं में कल्याण होता है।

श्रीरामकृष्णदेव कहते थे—"जाने या अनजाने, भूल से या भ्रम से किसी भी तरह क्यों न हो, भगवान का नाम लेने से उसका फल अवश्य मिलेगा। कोई नदी में जाकर स्नान करे तो उसका जैसा स्नान होता है, वैसे ही अगर किसी को पानी में ढकेल दिया जाय तो उसका भी स्नान हो जाता है, और कोई सोया हुआ हो और उस पर पानी डाल दिया जाय तो उसका भी स्नान हो ही जाता है।"

५. अगुण अरूप अलख अज जोई।
भगत प्रेमवश सगुण सो होई॥
जो गुण रहित सगुण सोई कैसे।
जलु हिम उपल बिलग नहिं जैसे॥

श्रीरामकृष्ण भी कहते हैं—"वह साकार हैं, निराकार भी। यह किस प्रकार जानते हो? जैसे सच्चिदानन्द एक समुद्र हो, जिसका ओर-छोर नहीं। भक्ति की हिम शक्ति से उस समुद्र का पानी जगह-जगह वर्फ वन गया हो—मानो पानी बर्फ के आकार में बंधा हुआ हो। अर्थात् भक्तों के पास वे कभी-कभी साकार रूप में दर्शन देते हैं।"

६. आगे राम लखन बने पाछें।
तापस बेस बिराजत काछें॥
उभय बीच सिय सोहति कैसे।
ब्रह्म जीव बिच माया जैसे॥

श्रीरामकृष्ण कहते हैं, "सिर्फ ढाई हाथ दूरी पर श्रीरामचन्द्र हैं, जो साक्षात ईश्वर हैं। बीच में सीता रूपिणी माया का पर्दा पड़ा हुआ है, जिसके कारण लक्ष्मण रूपी जीव को ईश्वर के दर्शन नहीं होते हैं। इसी तरह और सबकी अपेक्षा भगवान निकट है, परन्तु इस मायावरण के कारण तुम उसके दर्शन नहीं पाते।'

७. कलियुग समजुग आन नहिं जौं नर कर विस्वास।
गाई रामगुन बिमल भवतरहि बिनहि प्रयास॥
कृत जुग त्रेता द्वापर पूजा मख अरु योग।
जो गति सो कलि हरिनाम पावहिं लोग॥

श्रीरामकृष्ण भी कहते हैं, "ज्ञानयोगी निर्गुण निराकार निर्विशेष ब्रह्म को जानना चाहते हैं। किन्तु कलियुग में मनुष्यों के अन्नगत प्राण हैं। इस युग के लिए

नारदीय भक्ति ही सहजमार्ग है। यदि कोई अत्यंत व्याकुल होकर तीन दिन तीन रात भगवान को पुकारे तो उनके दर्शन हो सकते हैं।"

८. 'सोई जानत जेहो देई जनाई।'

श्री रामकृष्ण कहते है 'अंधेरे में गश्त लगाने वाला पहरेदार अपनी लालटेन के उजाले से सबको देख सकता है, पर उसे कोई नहीं देख पाता। अगर वह स्वयं उस लालटेन का प्रकाश अपने पर डाले तभी उसे देखा जा सकता है। इसी प्रकार भगवान भी सबको देखते हैं, परन्तु उन्हें कोई नहीं देख पाता। पर यदि वे कृपा करके स्वयं को प्रकाशित करें तभी मनुष्य उन्हें देख पाता है।"

९. बेनु करील श्रीखंड वसंतहि दूषण मृषा लगावै।
सार रहित हतभाग्य सुरभि पल्लव सो कहु किमि पावै॥ (विनय पत्रिका)

अर्थात् बाँस चंदन को एवं करील बसंत को व्यर्थ ही दोष देते हैं, असल में दोनों ही हतभाग्य हैं। बाँस में सार नहीं तब बेचारा चंदन उसमें सुगंध कहाँ से भर दे। इसी प्रकार करील के पत्ते नहीं होते तो वसंत उसे हरा-भरा कैसे करेगा?

श्रीरामकृष्णदेव भी कहते है, "मलयपवन के लगने से जिन पेड़ों में कुछ सार है, वे सब चंदन बन जाते हैं; परन्तु बाँस, केला आदि सार रहित वृक्षों पर कुछ असर नहीं होता। इसी तरह भगवत्कृपा पाकर, जिनमें कुछ सार है वे तत्काल सद्भाव से परिपूर्ण हो जाते हैं, किन्तु सारहीन विषयासक्त मनुष्य का सहज में कुछ नहीं होता।

१०. ज्यों जुवति अनुभवति प्रसव अतिदारुन दुःख उपजै।
ह्वै अनुकूल बिसारि सूल सह पुनि खल पतिहिं भजै॥
(विनयपत्रिका)

अर्थात् जैसे युवती स्त्री संतान जनन के समय अत्यंत कष्ट का अनुभव करती है (उस समय सोचती है कि अब। पति के पास नहीं जाऊँगी) परंतु वह मूर्खा सारी वेदनाओं को भूलकर पुनः उसी दुःख देने वाले पति की सेवा करती है।

श्रीरामकृष्णदेव कहते हैं, "संसारी लोग विषय भोग से दुःख पाकर भी उससे विरक्त नहीं होते। जैसे युवती प्रसव पीड़ा को अनुभव कर उस समय सोचती है कि अब उसके पास नहीं जाऊँगी; किन्तु सब कुछ भूलकर फिर पति के ही पास जाती है।"

११. जाके प्रिय न राम बैदेही'
तजिये ताहि कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही।
तज्यो पिता प्रह्लाद विभीषण बंधु भरत महतारी,
बलि गुरु तज्यो कंत ब्रज बनितन्हि भये मुदमंगलकारी॥
(विनयपत्रिका)

श्रीरामकृष्ण देव भी कहते हैं, "भरत,प्रह्लाद, शुकदेव, विभीषण, परशुराम, बलि तथा गोपीगण—इन्होंने भगवान के लिये अपने गुरुजनों की आज्ञा का उल्लंघन किया था।"

१२ कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम॥
(उत्तरकाण्ड)

अर्थात् जैसे कामी को स्त्री प्रिय लगती है और लोभी को जैसे धन प्यारा लगता है, वैसे ही हे रघुनाथजी। हे रामजी! आप निरंतर मुझे प्रिय लगिए।

श्रीरामकृष्णदेव कहते हैं, "भगवान के प्रति किस प्रकार का आकर्षण होना चाहिए? सती का पति की ओर, कृपण का धन की ओर तथा विषयी का विषय की ओर जो आकर्षण होता है, उन तीनों को एकत्र मिलाने पर जितना आकर्षण होता है उतना यदि भगवान् के प्रति हो तो उनका लाभ होता है।"

❀

स्वामी विवेकानन्द के संस्मरण

स्वामी सदाशिवानन्द

अपने जीवन में पहली बार मैंने स्वामी विवेकानन्द का पवित्र नाम, बिहार के एक सुदूरवर्ती नगर आरा के जिला न्यायालय में वकालत करने वाले एक अधिवक्ता के मुख से सुना। एक सार्वजनिक पुस्तकालय था, जिसमें वे अपने कुछ मित्रों को कलकत्ता के एक बंगाली परिवार में उत्पन्न भारत के एक हिन्दू संन्यासी के अद्भुत वीरतापूर्ण कार्यों के संबंध में बता रहे थे, जिन्होंने प्राचीन हिन्दू दर्शन की विजय-पताका शिकागो के महाधर्मसम्मेलन में फहरायी थी।

इसके कुछ ही दिनों पश्चात्, १८९८ ई० के जुलाई महीने में, मेरे अग्रज की आकस्मिक मृत्यु ने मुझे पवित्र नगरी वराणसी जाने को बाध्य कर दिया जहाँ मेरी बूढ़ी विधवा माँ स्वजन के वियोग से शोकाकुल हो बिल्कुल एकान्तवास कर रही थीं। मेरी दीक्षा पहले ही वृन्दावन के श्रीरंगनाथ मंदिर एवं मथुरा के द्वारकाधीश मंदिर के प्रथम महंत स्वामी रंगाचार्य के प्रशिष्य तथा स्वामी भागवताचार्य के शिष्य स्वामी रामस्वरूपाचार्य से हो चुकी थी। स्वामीजी (रामस्वरूपाचार्य) ने पूजा की सभी औपचारिक विधियों एवं ब्रह्मचर्य के कठिनव्रत के साथ कृपापूर्वक मुझे वैष्णव ब्रह्मचारी के रूप में अंगीकार कर लिया था। उनदिनों श्री सुरेशचंद्र दत्त द्वारा लिखित 'श्री रामकृष्ण के जीवन एवं उपदेश नामक पुस्तक ने मुझे काफी प्रभावित किया था। इस प्रकार मैं निर्झर के मूलस्रोत के अधिक निकट आया, जिससे अंततः मेरे आध्यात्मिक जीवन की प्यास बुझनेवाली थी और पहले भी जिससे अनेक लोगों की प्यास बुझी थी।

आश्विन महीने में महाष्टमी का दिन था। जगत दुर्लभ घोष के साथ मैं वाराणसी के दुर्गा मंदिर गया। इसके बाद इसी मित्र के साथ मैं स्वामी भास्करानंदजी महाराज के दर्शन के लिए गया जो उस समय अमेठी-नरेश के उद्यान-गृह में निवास कर रहे थे। वहाँ मैंने दो संन्यासियों—स्वामी निरंजनानंद एवं स्वामी शुद्धानंद को देखा। उनके साथ कुछ भद्रजन भी थे जिनकी ओर भी हमारा ध्यान गया। उनलोगों के मध्य गैरिक वस्त्र में लम्बी एवं बलिष्ठ आकृति देखकर अचानक मुझे स्वामी विवेकानन्द का स्मरण हो आया जो तबतक भारत वापस आ चुके थे।

हो न हो ये ही स्वामी विवेकानन्द हों—मैं मन ही मन सोच रहा था और इसकी सत्यता के लिए प्रतीक्षा करने लगा। लम्बी काया वाले संन्यासी ने स्वामी भास्करानंद को 'ॐ नमो नारायणाय' कहकर नमस्कार किया जैसी कि इस संप्रदाय के संन्यासियों के बीच रीति है और उन्होंने भी तत्क्षण 'नमो नारायणाय' कहकर प्रति नमस्कार किया। तत्पश्चात् दोनों पूर्व परिचितों की तरह अत्यंत घनिष्ठता पूर्वक वार्तालाप करने लगे। होते-होते बात स्वामी विवेकानन्द पर आ पहुँची और तुरत स्वामी भास्करानन्द के तपः पूत मुखमण्डल पर श्रद्धा एवं प्रेम के कोमल भाव फैल गये। उन्होंने कहा, "भैया! एक मर्तबा स्वामीजी का दर्शन कराओ।" वहाँ बहुत सारे लोग उपस्थित थे जिनकी उनके प्रति गहरी श्रद्धा थी। वे उन्हें महान विद्वान के रूप में देखते थे जिन्हें ज्ञान की प्राप्ति हो चुकी थी। परन्तु वे इस बात से बिल्कुल उदासीन थे कि इस प्रकार स्वामी विवेकानन्द के प्रति प्रशंसा के भाव व्यक्त करने से उपस्थित लोगों पर क्या प्रभाव पड़ेगा।

लम्बे कद वाले संन्यासी ने जवाब दिया, "मैं निश्चय ही उन्हें मिलूंगा, महाराज। वे अस्वस्थ हैं और स्थान परिवर्तन के उद्देश्य से अभी देवघर में हैं।" स्वामी भास्करानंद ने कहा, "तो शाम के बाद एक बार फिर आओ।" और इसके साथ ही वे लोग विदा हो गये तथा वह व्यक्ति जिन्हें मैं अत्यंत गौर से देख रहा था, वे भी नजरों से ओझल हो गये। बाद में पता लगाने पर मालूम हुआ कि इनका नाम स्वामी निरंजनानन्द है तथा वे स्वामी विवेकानन्द के गुरु-भ्राता हैं।

एकदिन १८९८ ई० के सितम्बर महीने में मैं अपनी नित्य की प्रार्थना एवं ध्यान के बाद बाहर निकल रहा था कि मेरी मुलाकात चारुचंद्र दास से हुई जो बाद में चलकर स्वामी शुभानन्द के नाम से रामकृष्ण संघ के संन्यासी हुए। उन्होंने वाराणसी में 'रामकृष्ण मिशन होम ऑफ सर्विस' की स्थापना की। हमलोग शीघ्र ही मित्र बन गये। उन्होंने मुझे मिशन द्वारा प्रकाशित कुछ पुस्तकें दीं जिनमें कुछ स्वामी विवेकानन्द की कृतियां भी थीं। मेरे विद्वान मित्र केदारनाथ मल्लिक, जो बाद में स्वामी अचलानंद हुए, के घर एक पाठ चक्र की स्थापना की गयी। लगभग दो वर्षों तक चारु बाबू अत्यंत श्रम के साथ कर्मयोग के महत्व एवं आध्यात्मिक उन्नति की दृष्टि से जीवन पर इसके प्रभाव के संबंध में हमारे संदेह दूर करते रहे। वे हमें स्वामी विवेकानन्द की अन्य पुस्तकों को भी पढ़कर सुनाते थे, जिनमें योग के अन्य पक्षों पर जोर दिया गया था। हमलोग प्रायः केदार बाबू एवं चारु बाबू के घर पर मिलते थे अथवा कभी-कभी हम अपने घर पर भी मिलते थे। इस प्रकार चारु बाबू ने एक साधारण, अत्यंत तुच्छ 'होम ऑफ सर्विस' प्रारंभ करने के उद्देश्य से युवा कार्यकर्ताओं का एक दल संगठित किया।

इसी बीच हमें पता चला कि स्वामी विवेकानन्द स्थान-परिवर्तन के उद्देश्य से वाराणसी पधार रहे हैं। उनके ठहरने की व्यवस्था राजा कालीकृष्ण ठाकुर के उद्यान-गृह में की गयी थी। राजा कालीकृष्ण ठाकुर स्वामी निरंजनानन्द से अच्छी तरह परिचित थे। हमारे 'होम' के युवकों ने स्टेशन पर फूल एवं पुष्प मालाओं से स्वामीजी का स्वागत करने के लिए मुझे चुना। जब स्वामीजी ट्रेन से प्लेटफॉर्म पर उतरे तो मैंने उनके गले में माला पहनायी तथा युगल-चरणों पर पुष्प रखा। जब मैंने उनके चेहरे को गौर से देखा तो अचानक उस चेहरे की याद आयी जिससे मैं पहले से ही अपने स्वप्नों में अच्छी तरह से परिचित था। दोनों में इतनी समानता थी कि मैं अव्यक्त श्रद्धा एवं आश्चर्य के भाव में खड़ा रहा। उन्होंने सुमधुर स्वर में मेरे संबंध में पूछा, "यह लड़का कौन है ?" (क्रमशः)

अनुवादक—कुमार विवेकानन्द

मन की प्रवृत्ति के अनुसार कार्य मिलने से अत्यन्त मूर्ख व्यक्ति भी उसे कर सकता है। समस्त कार्यों को जो अपने मन के अनुकूल बना लेता है, वही बुद्धिमान है। कोई भी कार्य छोटा नहीं है, संसार में समस्त वस्तु वट-बीज की तरह है, सरसों जैसा क्षुद्र दिखायी देने पर भी अति विशाल वट-वृक्ष उसके अन्दर विद्यमान है। बुद्धिमान वह है जो ऐसा देख पाता है एवं सभी कार्यों को जो महान् बनाने में समर्थ है।

जो लोग दुर्भिक्ष-निवारण कार्य कर रहे हैं; उन्हें इस ओर भी ध्यान रखना चाहिए कि कहीं गरीबों के प्राप्य को धोखेबाज न झपट लें। भारतवर्ष ऐसे आलसी धोखेबाजों से भरा पड़ा है एवं तुम्हें यह देखकर आश्चर्य होगा कि वे लोग कभी भूखों नहीं मरते हैं—उन्हें कुछ न कुछ खाने को मिलता ही है।

लम्बे कद वाले संन्यासी ने जवाब दिया, "मैं निश्चय ही उन्हें मिलूँगा, महाराज। वे बीमार हैं और स्थान परिवर्तन के उद्देश्य से अभी देवघर में हैं।" स्वामी भास्करानंद ने कहा, 'तो शाम के बाद एक बार फिर आओ।' और इसके साथ ही वे लोग विदा हो गये तथा वह व्यक्ति जिन्हें मैं अत्यंत गौर से देख रहा था, वे भी नजरों से ओझल हो गये। बाद में पता लगाने पर मालूम हुआ कि इनका नाम स्वामी निरंजनानन्द है तथा वे स्वामी विवेकानन्द के गुरु-भ्राता हैं।

एकदिन १८९८ ई० के सितम्बर महीने में मैं अपनी नित्य की प्रार्थना एवं ध्यान के बाद बाहर निकल रहा था कि मेरी मुलाकात चारुचंद्र दास से हुई जो बाद में चलकर स्वामी शुभानन्द के नाम से रामकृष्ण संघ के संन्यासी हुए। उन्होंने वाराणसी में 'रामकृष्ण मिशन होम ऑफ सर्विस' की स्थापना की। हमलोग शीघ्र ही मित्र बन गये। उन्होंने मुझे मिशन द्वारा प्रकाशित कुछ पुस्तकें दीं जिनमें कुछ स्वामी विवेकानन्द की कृतियाँ भी थीं। मेरे विद्वान मित्र केदारनाथ मल्लिक, जो बाद में स्वामी अचलानंद हुए, के घर एक पाठ चक्र की स्थापना की गयी। लगभग दो वर्षों तक चारु बाबू अत्यंत श्रम के साथ कर्मयोग के महत्व एवं आध्यात्मिक उन्नति की दृष्टि से जीवन पर इसके प्रभाव के संबंध में हमारे संदेह दूर करते रहे। वे हमें स्वामी विवेकानन्द की अन्य पुस्तकों को भी पढ़कर सुनाते थे, जिनमें योग के अन्य पक्षों पर जोर दिया गया था। हमलोग प्रायः केदार बाबू एवं चारु बाबू के घर पर मिलते थे अथवा कभी-कभी हम अपने घर पर भी मिलते थे। इस प्रकार चारु बाबू ने एक साधारण, अत्यंत तुच्छ 'होम ऑफ सर्विस' प्रारंभ करने के उद्देश्य से युवा कार्यकर्त्ताओं का एक दल संगठित किया।

इसी बीच हमें पता चला कि स्वामी विवेकानन्द स्थान-परिवर्तन के उद्देश्य से वाराणसी पधार रहे हैं। उनके ठहरने की व्यवस्था राजा कालीकृष्ण ठाकुर के उद्यान-गृह में की गयी थी। राजा कालीकृष्ण ठाकुर स्वामी निरंजनानन्द से अच्छी तरह परिचित थे। हमारे 'होम' के युवकों ने स्टेशन पर फूल एवं पुष्प मालाओं से स्वामीजी का स्वागत करने के लिए मुझे चुना। जब स्वामीजी ट्रेन से प्लेटफॉर्म पर उतरे तो मैं ने उनके गले में माला पहनायी तथा युगल-चरणों पर पुष्प रखा। जब मैंने उनके चेहरे को गौर से देखा तो अचानक उस चेहरे की याद आयी जिससे मैं पहले से ही अपने स्वप्नों में अच्छी तरह से परिचित था। दोनों में इतनी समानता थी कि मैं अव्यक्त श्रद्धा एवं आश्चर्य के भाव में खड़ा रहा। उन्होंने सुमधुर स्वर में मेरे संबंध में पूछा, "यह लड़का कौन है?" (क्रमशः)

अनुवादक—कुमार विवेकानन्द

मन की प्रवृत्ति के अनुसार कार्य मिलने से अत्यन्त मूर्ख व्यक्ति भी उसे कर सकता है। समस्त कार्यों को जो अपने मन के अनुकूल बना लेता है, वही बुद्धिमान है। कोई भी कार्य छोटा नहीं है, संसार में समस्त वस्तु वट-बीज की तरह है, सरसों जैसा क्षुद्र दिखायी देने पर भी अति विशाल वट-वृक्ष उसके अन्दर विद्यमान है। बुद्धिमान वह है जो ऐसा देख पाता है एवं सभी कार्यों को जो महान् बनाने में समर्थ है।

जो लोग दुर्भिक्ष-निवारण कार्य कर रहे हैं; उन्हें इस ओर भी ध्यान रखना चाहिए कि कहीं गरीबों के प्राप्य को धोखेबाज न झपट लें। भारतवर्ष ऐसे आलसी धोखेबाजों से भरा पड़ा है एवं तुम्हें यह देखकर आश्चर्य होगा कि वे लोग कभी भूखों नहीं मरते हैं—उन्हें कुछ न कुछ खाने को मिलता ही है।

धारावाहिक

स्वामी अद्भुतानन्द (लाटू महाराज) की जीवन कथा

—चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय
अनुवादक स्वामी विदेहात्मानन्द
रामकृष्ण मठ, नागपुर

बलराम मन्दिर में लाटू महाराज से सुना है कि जिस वर्ष उन्होंने विद्यासागर महाशय को पहली बार देखा, उसी वर्ष वे सींथी के महोत्सव में भी पहली बार गये। इसी से हम अनुमान कर सकते हैं कि १८८२ ई० में ही वे सींथी के उद्यान में गये थे। अपने अनुमान के समर्थन में हम एक और घटना का भी उल्लेख कर सकते हैं। एक बार वार्तालाप के दौरान उन्होंने एक भक्त को कहा था कि सींथी के उद्यान में ही उन्होंने आचार्य शिवनाथ शास्त्री को प्रथम बार देखा था। हमारी जानकारी के अनुसार २८ अक्तूबर, १८८२ ई० को आचार्य शिवनाथ शास्त्री वेणी पाल के महोत्सव में भाग लेने सींथी गये थे। (श्री म कथित 'वचनामृत')

'जानते हो! सींथी के उद्यान में उन्हें (ठाकुर को) लेकर केशव बाबू के दल के लोग खूब उत्सव किया करते थे। सब बड़े-बड़े लोग वहाँ आते। वहाँ पर मैंने तुम्हारे आचार्य (शिवनाथ शास्त्री) को पहली बार देखा। ठाकुर शिवनाथ से बड़ा प्यार रखते थे, कहते—'एक गँजेड़ी दूसरे गँजेड़ी को देखकर जैसा आनन्दित होता है, तुम्हें देखकर मैं (ठाकुर) भी वैसा ही आनन्दित होता हूँ।' परन्तु शिवनाथ शास्त्री उनके साथ ज्यादा नहीं मिलते थे।·· एक दिन उनके आने की बात थी, पर नहीं आये। इस पर उन्होंने (ठाकुर ने) क्या कहा जानते हो?—'कहा था आऊँगा, पर आया नहीं—यह तो उचित नहीं। वचन के खिलाफ कार्य नहीं करना चाहिए, सत्य ही कलिकाल की तपस्या है। जिसकी सत्य पर निष्ठा नहीं, उसे भगवत्-प्राप्ति नहीं हो सकती। सत्य में निष्ठा न रहने पर अन्त में सब कुछ बर्बाद हो जाता है।'···एक दिन उन्होंने (ठाकुर ने) उनसे (शिवनाथ शास्त्री से) कहा—'क्यों जी, क्या तुम कहते हो कि मेरा मस्तिष्क ठीक नहीं है? तुम दिन-रात विषय-चिन्तन करते हो और सोचते हो कि तुम्हारा मस्तिष्क ठीक है; और मैं दिन-रात ईश्वर का चिन्तन करके पागल हो गया हूँ!' ··परन्तु शिवनाथ बड़े बहादुर थे, (हजारों कार्यों के बीच भी) उन्होंने ईश्वर-ईश्वर करते हुए जीवन बिता दिया।"

वेणी बाबू प्रतिवर्ष अपने उद्यान में दो बार उत्सव करते और खूब खिलाते भी थे। उत्सव में उपासना और कीर्तन आदि होते थे। सेवक लाटू वहाँ तीन बार गये थे। इनमें से एक बार की एक घटना हम यहाँ दे रहे हैं—

"उत्सव समाप्त हो जाने पर वेणी बाबू स्वयं ही एक डलिया खाद्य सामग्री लाये और उनकी गाड़ी में रख देना चाहा। परन्तु उन्होंने स्वीकार नहीं किया। इस पर वेणी बाबू बड़े दुःखी हुए और बोले—'रामलाल (दादा) नहीं आ सके, उनका खाना दे रहा था, परन्तु वह भी नहीं लिया।' लेकिन वेणी बाबू ने वह खाना दक्षिणेश्वर भेज दिया था।"

अब हम १८८३ ई० की घटनाओं पर आते हैं। लाटू को साथ लेकर ठाकुर मणि मल्लिक के घर गये। मणि मल्लिक को ठाकुर अपने भक्तों में एक मानते थे। ·····एक दिन उन्हें (मणि मल्लिक को) कहा—देखो जी, तुम बड़े हिसाबी हो, इतने हिसाब की क्या जरूरत? भक्त की जैसी आय वैसा व्यय।'·····उनके दक्षिणेश्वर आने पर ठाकुर पूछते—'आज कैसे आये? वे (मणि मल्लिक) घर से गराणहाटा तक पैदल आते, फिर वहाँ से साझे की गाड़ी में चढ़कर बराहनगर में उतरते और वहाँ से पैदल चलकर दक्षिणेश्वर आते। इसीलिए ठाकुर यह बात पूछते थे। ··किसी-किसी दिन धूप से उनका चेहरा लाल हो जाता, यही देखकर ठाकुर उनसे पूछते—'देखो, इतना कष्ट उठाकर तुम यहाँ क्यों आते हो?

तुम एक गाड़ी करके ही तो आ सकते हो।' इस पर वे क्या उत्तर देते जानते हो?—'मैं ही यदि गाड़ी पर चढ़ूँ तो फिर मेरे बाद जो लोग आयेंगे, वे तो बग्घी पर चढ़ेंगे। आप ही तो कहते हैं कि गृहस्थ को बाल-बच्चों के लिए व्यवस्था करनी होगी, उपार्जित धन का दान करना होगा, फिर उनके लिए भी कुछ संचय करके छोड़ जाना होगा, नहीं तो बाल-बच्चे गाली-गलौज करेंगे।' ···एक दिन तीर्थ करके आने के बाद उन्होंने (मणि मल्लिक ने) ठाकुर को कहा—'तीर्थ में साधु-संन्यासी लोग पैसे के लिए बहुत तंग करते हैं।' इस पर ठाकुर ने क्या कहा जानते हो?—'साधु-संन्यासी लोग दो-एक पैसा माँगते हैं, इस पर तुम्हें इतनी नाराजगी होती है। ऐसा मन लेकर तीर्थ करने जाना तो उचित नहीं। तीर्थ में जाकर दान करना चाहिए। संन्यासी लोग तो कोई रोजगार नहीं करते—इसीलिए उन्हें दो-एक पैसा माँगना पड़ता है। दुनिया के सारे सुखों का भोग तुम लोग करोगे और साधु लोग सब त्याग ही किये जायेंगे—मानो वे हवा पीकर ही रहेंगे।'···एक बार राखाल भाई के देश में जल का बड़ा संकट पड़ा था। ठाकुर ने उन्हें (मणि मल्लिक को) वहाँ एक पोखरा खुदवा देने को कहा था।···उनके (मणि मल्लिक के) एक पुत्र का देहान्त हो गया था। एक दिन वे ठाकुर के पास आकर बड़ा दुःख व्यक्त कर रहे थे। उन्होंने (ठाकुर ने) सब सुनने के बाद एक भजन गाना शुरू कर दिया। इसी से उनका दुःख कम हो गया।···वे गरीब बच्चों को पढ़ाने के लिए काफी धन व्यय करते थे।··· एक दिन उनसे (मणि मल्लिक से) कहा—'देखो! उमर हो जाने पर संसार से निकलकर ईश्वर-चिन्तन करना चाहिए। हृदय में ईश्वर का ध्यान करना चाहिए, तभी उनके प्रति प्रेम का उदय होगा।'

इसी वर्ष ठाकुर लाटू को साथ लेकर बेलघर के गोविन्द मुखोपाध्याय के घर गये थे। श्री गोविन्द मुखोपाध्याय के बारे में और कोई बात हमें ज्ञात नहीं है।

१८८१ ई० में ही लगता है लाटू ठाकुर भक्त श्रीयुत अधरचन्द्र सेन के घर भी गये थे। परवर्ती काल में लाटू महाराज ने अधरचन्द्र सेन महाशय के बारे में अनेक बातें कही थीं। संक्षेप में वे निम्नलिखित हैं—

"हमलोगों को साथ लेकर वे (ठाकुर) शोभाबाजार के बेनियाटोला जाया करते थे। अधर बाबू के घर को ठाकुर अपना कलकत्ते का बैठकखाना कहते थे।····अधर बाबू के घर पर सर्वदा उत्सव होता था और वे हमलोगों को खूब खिलाया करते थे।····अधर बाबू की माँ बड़ी ही भक्तिमती थीं, भाद्र मास में जब आम के दाम चढ़ जाते थे तब वे लंगड़े आम, मर्तमान केले और कड़े पाक का सन्देश भेज दिया करती थीं। अधर बाबू की दी हुई चीजें ठाकुर खूब खाते थे।····एक दिन उनके घर पर हम सबका निमंत्रण था। परन्तु वे राम बाबू को कहना भूल गये। राम बाबू इस पर बड़े दुःखी हुए थे। उन्होंने (रामबाबू ने) अभिमानपूर्वक ठाकुर से कहा था—'हमने ऐसा कौन सा अपराध किया है जो हमें वंचित कर दिया? यह बात सुनकर उन्होंने (ठाकुर ने) रामबाबू को कहा—'देखो राम! निमंत्रण देने का सारा भार राखाल के ऊपर था, राखाल तुम्हें बतलाना भूल गया है। राखाल के ऊपर अभिमान करना क्या तुम्हें शोभा देता है? वह अभी बच्चा है!' इस बात का पता लगने पर अधर बाबू स्वयं ही राम बाबू के घर जाकर उन्हें निमंत्रित कर आये थे।··एक दिन उनके (अधर बाबू के) घर भोजन करते समय वे (ठाकुर) बोले—'देखो जी! खट्टे आम मेरे पत्तल में मत देना।' यह बात सुनकर अधर बाबू घर के भीतर गये और चुन-चुनकर अच्छे आम लाकर ठाकुर को दिये। वे आम खाकर ठाकुर ने कहा—'लगता है ये आम तुम्हारी माँ ने चुन दिये हैं, नहीं तो इतनने मीठे आम तुम कैसे चुन पाते!'··· राखाल भाई उनके (अधर बाबू) घर भात खाता था, इस पर दो-चार भक्तों ने कहा था—'राखाल ने स्वर्णवणिक् का भात खाया है'। इस पर उन्होंने (ठाकुर ने) क्या कहा था जानते हो?—'भक्तों के बीच जाति-विचार कैसा? भक्त का अन्न शुद्ध अन्न है: वहाँ खाने में दोष नहीं है।' ···वहाँ पर (अधर बाबू के

बैठके में) मैंने तुम्हारे बंकिम बाबू को पहली बार देखा था। उनके साथ उनकी बहुत सी बातें हुई थीं। तुम्हारे बंकिम बाबू बड़े चालाक आदमी हैं। उनकी (ठाकुर की) परीक्षा लेने को आये थे, परन्तु उनके सामने हार मान गये। जाते समय क्या बोले मालूम है?—एक दिन अपने घर आने को। परन्तु उन्होंने निमंत्रण नहीं भेजा। इसीलिए उनका (ठाकुर का) जाना न हो सका था।···अधर बाबू कितने ही दिनों तक रोज दक्षिणेश्वर जाते और साथ में खाद्यसामग्री भी ले जाते।···एक दिन उन्होंने उनसे (ठाकुर से) पूछा—'आपके पास कौन सी सिद्धियां हैं?' इस पर वे (ठाकुर) हँसते हुए बोले—'जो लोग डिप्टी होकर सबको भयभीत किये रहते हैं, माँ की कृपा से उन डिप्टी लोगों को सुला रखता हूं।'···अधर बाबू को उन्होंने घोड़े पर सवारी करने से मना किया था, परन्तु वे इस बात को नहीं मानते थे। (बाद में) घोड़े से गिरकर उनका देहान्त हो गया।··· अधर बाबू की मृत्यु की बात सुनकर ठाकुर ने कहा था—'एक-एक कर सभी बैठकखाने बन्द हो रहे हैं, अब यह अड्डा भी बन्द हो जाएगा।'···अधर बाबू के घर पर सब बड़े-बड़े कीर्तनियाँ आया करते थे, वहीं पर मैंने तुम्हारे देश का चण्डीगान सुना था। राजनारायण का चण्डीगान मुझे बड़ा अच्छा लगा था।···अधर बाबू की गाड़ी में ठाकुर कभी-कभी कालीघाट जाते थे, वहाँ पर भी वे भक्तों के साथ बड़ा आमोद-प्रमोद करते थे।···अधर बाबू दक्षिणेश्वर में आकर सो जाते थे। इस पर कोई-कोई उनकी निन्दा किया करता था। इस पर ठाकुर ने एक दिन क्या कहा था जानते हो?—'तुम लोग क्या समझोगे मूर्खो? यह माँ का क्षेत्र है, शान्तिक्षेत्र। यहाँ आकर वे लोग विषय-चर्चा न करके सो रहे हैं, सो अच्छा है। थोड़ा शान्ति तो पा रहे है।"

* * *

देखते ही देखते ठाकुर के द्वितीय जन्मोत्सव का दिन आ पहुँचा। उस दिन का विवरण जैसा हमने लाटू महाराज के मुख से सुना है, यहाँ दे रहे हैं। लाटू महाराज ने हमें कोई तरीख नहीं बतायी थी। हम श्री'म' द्वारा लिखित 'वचनामृत' से दिनांक उद्धृत कर रहे हैं—११ मार्च, १८८३ ई०।

ठाकुर के द्वितीय जन्मोत्सव का सविस्तर विवरण श्रीरामकृष्ण वचनामृत में लिपिबद्ध हुआ है। अतः पुनरुक्ति के भय से हम सिर्फ उन्हीं बातों को लिख रहे हैं जो हमने लाटू महाराज से सुनी है, पर वहां नहीं मिलतीं।

"उस दिन ठाकुर ने मुझे गंगा से जल लाने को कहा। केवल एक कलश जल से उन्होंने स्नान किया। स्नान के पश्चात् वे माँ के मन्दिर में गये। उस समय हम लोग रसोई के इन्तजाम में लगे थे। लगभग १०० से १५० लोगों का भोजन हुआ था। उस दिन मनोमोहन बाबू कोन्नगर से कीर्तन-पार्टी ले आये थे। उन लोगों के साथ ठाकुर ने खूब कीर्तन किया था। हम लोगों को भी उन्होंने उसमें भाग लेने को कहा था। उस दिन पंचवटी में गायन हुआ था। उस दिन ठाकुर ने कहा था, 'मैं सिर्फ संन्यासी नहीं, संन्यासियों का राजा हूँ।' उस दिन खाना हो जाने के बाद जो कुछ बचा था, वह सब गरीबों में बाँट दिया गया था।

"इसी बीच एक दिन राखाल भाई की दक्षिणेश्वर में तबीयत खराब हो गयी, इस पर उन्होंने राखाल को कहा - 'अरे! जगन्नाथ का प्रसाद खा तो तेरी बीमारी ठीक हो जायगी।' जानते हो! जगन्नाथ का प्रसाद इतना ही गुणकारी है! तुम लोग तो जगन्नाथ के प्रसाद को मानते नहीं, और वे सबको कहते थे—'भोजन के पहले दो-एक दाना महाप्रसाद खाना।'

(क्रमशः)

Faith, faith, faith in ourselves, faith, faith in God— this is the secret of greatness.

— Swami Vivekananda

स्वामी विवेकानन्दकृत योग पर विख्यात पुस्तकें

ज्ञानयोग :— रु० ११.००

वेदान्त के गूढ़ तत्त्वों का सरल, स्पष्ट तथा सुन्दर रूप से विवेचन।

राजयोग (पातंजल **योगसूत्र**, सूत्रार्थ और व्याख्यासहित) :— रु० ९.००

प्राणायाम-ध्यान-धारणा द्वारा समाधि-अवस्था की प्राप्ति के विषय में उपयोगी सूचनाएँ और मार्गप्रदर्शन।

कर्मयोग :— रु० ६.००

'आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च' इस आदर्श के अनुसार कर्म किस प्रकार किये जाएँ, जिससे वे परम शान्ति का निदान बनें—इस रहस्य का विवरण।

भक्तियोग :— रु० ४.००

भक्ति का सच्चा अर्थ, सच्चे भक्त का जीवन तथा भक्तिमार्ग पर अधिकाधिक अग्रसर होने के लिए आवश्यक गुण तथा साधनाएँ—इस विषय का अत्यन्त रोचक एवं मौलिक दर्शन।

प्रेमयोग :— रु० ५,००

प्रत्येक मानव के हृदय में निहित महान् शक्ति प्रेम का जीवन के सर्वोच्च ध्येय भगवत्प्राप्ति के लिए उपयोग किस प्रकार करें, इसका अत्यन्त भावपूर्ण विवेचन।

❀ ❀ ❀

स्वामी विवेकानन्द के दस भागों में उपलब्ध सम्पूर्ण साहित्य में से विशेष महत्वपूर्ण व्याख्यानों, प्रवचनों, लेखों, पत्रों, सम्भाषणों एवं कविताओं का प्रातिनिधिक संकलन

विवेकानन्द साहित्य संचयन

मूल्य : १०.००

विस्तृत सूचीपत्र के लिए लिखिए :—

रामकृष्ण मठ

धन्तोली, नागपुर—४४० ०१२
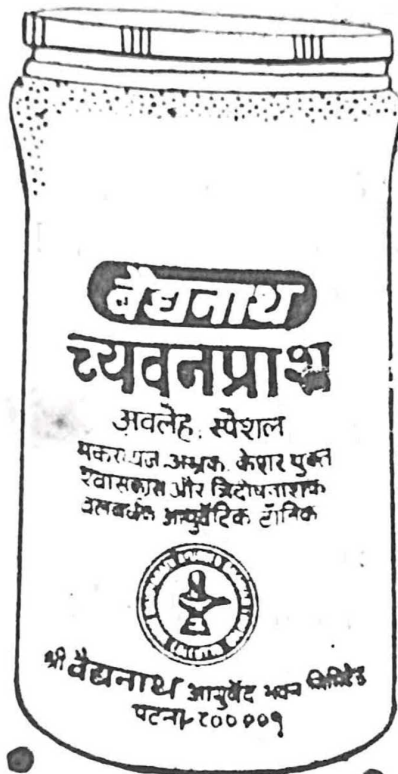
डाक पंजीयित संख्या—सी० एष० पी०—१४-८३

विवेक वाणी

स्मृति और पुराण—सीमित बुद्धिवाले व्यक्तियों की रचनाएं हैं और भ्रम, प्रमाद, भेद तथा द्वेष-भाव से परिपूर्ण हैं। उनके कुछ अंश जिनमें मन की उदारता और प्रेम का आविर्भाव है ग्रहण करने योग्य हैं और शेष सब का त्याग कर देना चाहिए। उपनिषद् और गीता सच्चे शास्त्र हैं, और राम, कृष्ण, बुद्ध, चैतन्य, नानक, कबीर आदि सच्चे अवतार हैं; क्योंकि उनके हृदय आकाश के समान विशाल थे—और इन सब में श्रेष्ठ हैं रामकृष्ण। रामानुज, शंकर इत्यादि संकीर्ण हृदयवाले केवल पण्डित मालूम होते हैं। वह प्रेम कहाँ है, वह हृदय जो दूसरों का दुःख देखकर द्रवित हो? पण्डितों का शुष्क विद्याभिमान—जैसे-तैसे केवल अपने आपको मुक्त करने की इच्छा! परन्तु महाशय क्या यह संभव है? क्या इसकी कभी सम्भावना थी या हो सकती है? क्या अहंभाव का अल्पांश भी रहने से किसी चीज को प्राप्ति हो सकती है?

मुझे और एक भाव दिखायी देता है—मेरे मन में दिनोंदिन यह विश्वास बढ़ता चला जा रहा है कि जाति का भाव सब से अधिक भेद उत्पन्न करनेवाला और माया का मूल है सब प्रकार का जाति-भेद, चाहे वह जन्मगत हो या गुणगत, बन्धन ही है। कुछ मित्र यह उपदेश देते हैं, "सच है, मन में ऐसा ही समझो, परन्तु व्यावहारिक जगत् में जाति जैसे भेदों का रहना उचित ही है।" ·····मन में एकता का भाव (कैसी आत्मवंचना!)—और बाह्य जगत में राक्षसों का नरक-नृत्य —अत्याचार और उत्पीड़न दरिद्रों के यम! परन्तु यदि उस अछूत के पास पर्याप्त धन हो तो "अरे, वह तो धर्म का रक्षक है!!!"········

एक और सत्य जिसका मैंने अनुभव किया है वह यह है कि निःस्वार्थ सेवा ही धर्म है और वाह्यविधि, अनुष्ठान आदि केवल पागलपन है—अपनी मुक्ति की अभिलाषा करना भी अनुचित है। मुक्ति केवल उसके लिए है जो दूसरों के लिए सर्वस्व त्याग देता है, परन्तु वे लोग जो "मेरी मुक्ति" की अहर्निश रट लगाये रहते हैं वे "इतो नष्टस्ततो भ्रष्टः" हो जाते हैं; ऐसा होते मैंने कई बार प्रत्यक्ष देखा है।

स्वामी विवेकानन्द

पत्रावली (द्वि० भा० पृ० ९५-९६)

मूल्य : २.५०

श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं श्रीकांत लाभ द्वारा जनता प्रेस, नया टोला, पटना—४ में मुद्रित।